वैज्ञानिक चिंतन की आवाज़

तर्कशील पथ

TARKSHEEL PATH

नवंबर – दिसंबर 2024



30/-

जो बात समझ नहीं आती, उसकी पूजा शुरू हो जाती है। ....एलिस वाकर

आप धीरे-धीरे मरने लगते हैं

आप धीरे-धीरे मरने लगते हैं,
अगर आप करते नहीं कोई यात्रा,
पढ़ते नहीं कोई किताब,
सुनते नहीं जीवन की ध्वनियाँ,
करते नहीं किसी की तारीफ़।

आप धीरे-धीरे मरने लगते हैं,
जब आप मार डालते हैं अपना स्वाभिमान,
नहीं करने देते मदद अपनी और न ही करते हैं मदद दूसरों की

आप धीरे-धीरे मरने लगते हैं,
अगर आप बन जाते हैं गुलाम अपनी आदतों के,
चलते हैं रोज़ उन्हीं रोज़ वाले रास्तों पे,
नहीं बदलते हैं अपना दैनिक नियम व्यवहार,
नहीं पहनते हैं अलग-अलग रंग,
या आप नहीं बात करते उनसे जो हैं अजनबी अनजान।

आप धीरे-धीरे मरने लगते हैं,
अगर आप नहीं महसूस करना चाहते आवेगों को,
और उनसे जुड़ी अशांत भावनाओं को,
वे जिनसे नम होती हों आपकी आँखें,
और करती हों तेज़ आपकी धड़कनों को।

आप धीरे-धीरे मरने लगते हैं,
अगर आप नहीं बदल सकते हों अपनी ज़िंदगी को,
जब हों आप असंतुष्ट अपने काम और परिणाम से,
अगर आप अनिश्चित के लिए नहीं छोड़ सकते हों निश्चित को,
अगर आप नहीं करते हों पीछा किसी स्वप्न का,
अगर आप नहीं देते हों इजाज़त खुद को,
अपने जीवन में कम से कम एक बार,
किसी समझदार सलाह से दूर भाग जाने की..

तब आप धीरे-धीरे मरने लगते हैं..!!

-- मार्था मेड्रिडोस

मुख्य संपादक
बलबीर लौंगोवाल
balbirlongowal1966@gmail.com
98153 17028
संपादक
गुरमीत अम्बाला
tarksheeleditor@gmail.com
94160 36203
संपादकी मंडल
अजायब जलालाना (94167 24331)
कृष्ण कायत (98961 05643)

विदेशी प्रतिनिद्धि
अवतार बाई कनेडा
प्रधान TRSC (+1-672-558-5757)
अछर सिंह खरलवीर कवैंटरी (इंगलैंड)
(+44-748-635-1185)
मा. भजन सिंह कनेडा, बलदेव रहिपा टोरांटो

पत्रिका शुल्क :-
वार्षिक : 150/- रू.
विदेश : वार्षिक : 40 यू.एस.डॉलर
रचनाएं, पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के लिए पता:
मुख्य कार्यालय
तर्कशील भवन, संघेडा बाईपास
तर्कशील चौंक, बरनाला-148101
01679-241466, 98769 53561
tarkshiloffice@gmail.com
पत्रिका को पढ़ने के लिए लॉग ऑन करें:
www.tarksheel.org
Tarksheel Mobile App :
Readwhere.com

राजेन्द्र भदौड़, प्रकाशक,मुद्रक,स्वामी की तरफ से तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) द्वारा अप्पू आर्ट प्रैस, शाहकोट (जलन्धर) से मुद्रित करके मुख्य कार्यालय तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.), बरनाला, (पंजाब) से तर्कशील सोसायटी पंजाब व हरियाणा के माध्यम से वितरण के लिए जारी किया।

तर्कशील पथ पत्रिका हेतु शुल्क
पंजाब नैशनल बैंक में
तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) के नाम से
खाता सं. 0044000100282234
IFSC: PUNB0004400 में जमा करा सकते है।
एंव पत्रिका भेजने के लिए एड्रेस व शुल्क की स्क्रीन शॉट/रसीद मोबाइल नम्बर
+91 98156 70725 पर वट्सएप कर दें।

इस अंक में

आनलाईन पत्रिका को पढ़ने के लिए:

www.tarksheel.org,
http://tarksheelblog.wordpress.com

Tarksheel on Mobile App:
Readwhere.com

संपादकीय

''माफ करना पिताजी, मैं काबिल नही बन सका'' ये शब्द माछीवाड़ा (पंजाब) के एक निजी अस्पताल में काम करने वाले रणवां के 23 वर्षीय युवक जसप्रीत सिंह जस के सुसाइड नोट से हैं, जिसने हस्पताल में पंखे से फंदा लगाकर आत्महत्या कर ली थी। दिल को झकझोर देने वाले ये शब्द हर संवेदनशील इंसान को अंदर तक झकझोर देते हैं। कितने डरावने हैं ये शब्द एक अठारह साल की लड़की के अपने सुसाइड नोट में लिखे ''माँ, पापा, मैं जे.ई.ई. परीक्षा पास न कर सकती हूँ, इसलिए मैंने आत्महत्या कर ली, मैं हार गई हूं। मैं बहुत बुरी बेटी हूं। मुझे माफ़ कर देना, मम्मी और पापा।'' नंगल के पास संगतपुर गांव के बारहवीं कक्षा के छात्र हरमनप्रीत सिंह ने वार्षिक परीक्षा में अपेक्षा से कम अंक प्राप्त करने के बाद अपने ही घर में लटककर अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली। 15 सितंबर को 2017 के NEET टॉपर, मौलाना आज़ाद मेडिकल कॉलेज, दिल्ली के एम.डी. के द्वितीय वर्ष के छात्र 25 वर्षीय मुक्तसर के युवक डॉ. नवदीप सिंह ने आत्महत्या कर ली. गांव नंगली (फतेहगढ़ चूड़ियां रोड) में बारहवीं कक्षा के छात्र अमरबीर सिंह के पेपर में कम नंबर आने पर पिता-पुत्र के बीच हुई बहस के दौरान उन्होंने घर में मौजूद लाइसेंसी हथियार से एक-दूसरे पर गोली चला दी, जिसमें इस अवसर पर पिता की मृत्यु हो गई और उनका पुत्र घायल हो गया। ये कुछ दिल दहला देने वाली चुनिंदा घटनाएं उस संकट का संकेत हैं जिसमें हमारे युवा/छात्र बड़े हो रहे हैं जिसका सबसे भयावह परिणाम आत्महत्या के रूप में सामने आता है। एन. सी. आर. बी. (राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो) के अनुसार, 2020 में भारत में हर 42 मिनट में एक छात्र ने आत्महत्या की, और यह दर हर साल बढ़ रही है। वाई.एम.ई.आर.जर्नल के एक अन्य अध्ययन से एक कठोर वास्तविकता का पता चलता है कि 80 प्रतिशत छात्र माता-पिता की अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरने के दबाव के कारण तनाव महसूस करते हैं, जबकि 55 प्रतिशत छात्र माता-पिता द्वारा थोपे गए विकल्प को तनाव का कारण बताते हैं। यह स्थिती गंभीरता से विचार करने की मांग करती है। लाभ पर आधारित हमारी इस अमानवीय लुटेरी व्यवस्था ने सार्वजनिक क्षेत्र को नष्ट कर दिया है और समाज को शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य से भटकाकर कॉरपोरेट्स/बड़े निजी संस्थानों/बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लाभ के मकसद को पूरा कर दिया है और हमारे छात्र समुदाय को एक बेहूदा गला घोंट मुकाबला दिया है। कुछ चुने हुए विद्यार्थियों को प्रतिस्पर्धा की दौड़ में सफल बताता है, तथा बाकियों को निकम्मा, सुस्त, असफल युवा घोषित कर दिया जाता है जो प्रतियोगी परीक्षाओं में उत्तीर्ण नहीं हो पाते। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार कोई भी बच्चा नालायक नहीं होता। उस की आंतरिक प्रतिभा को पहचानने की जरूरत होती है। माता-पिता को अपनी इच्छाओं का प्रभाव अपने बच्चों पर नहीं पड़ने देना चाहिए। बच्चे को उसके अंदर की प्रतिभा के अनुरूप आगे बढ़ने का अवसर देना चाहिए। यह माता-पिता, शिक्षक और समाज की जिम्मेदारी है कि वे बच्चे को जीवन और समाज की कटु वास्तविकताओं से अवगत करायें। शिक्षा को बच्चे का सर्वांगीण विकास करने के साथ-साथ समाज में विभिन्न क्षेत्रों में सार्वजनिक सेवाएँ प्रदान करने वाले पेशेवर भी तैयार करने होंगे, लेकिन आज शिक्षा से यह सब गायब हो गया है।

आइए इस पर गंभीर चर्चा करके अपने बच्चों की जान बचाएं।

सांप्रदायिक दंगे और उनका इलाज

– शहीद भगत सिंह

1919 के जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड के बाद ब्रिटिश सरकार ने सांप्रदायिक दंगों का खूब प्रचार शुरु किया। इसके असर से 1924 में कोहाट में बहुत ही अमानवीय ढंग से हिन्दू–मुस्लिम दंगे हुए। इसके बाद राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना में सांप्रदायिक दंगों पर लंबी बहस चली। इन्हें समाप्त करने की जरूरत तो सबने महसूस की, लेकिन कांग्रेसी नेताओं ने हिन्दू–मुस्लिम नेताओं में सुलहनामा लिखाकर दंगों को रोकने के यत्न किये। इस समस्या के निश्चित हल के लिए क्रांतिकारी आन्दोलन ने अपने विचार प्रस्तुत किये। प्रस्तुत लेख जून, 1928 के ''किरती'' में छपा। यह लेख इस समस्या पर शहीद भगतसिंह और उनके साथियों के विचारों का सार है।

भारत वर्ष की दशा इस समय बड़ी दयनीय है। एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायियों के जानी दुश्मन हैं। अब तो एक धर्म का होना ही दूसरे धर्म का कट्टर शत्रु होना है। यदि इस बात का भी यकीन न हो तो लाहौर के ताजा दंगे ही देख लें। किस प्रकार मुसलमानों ने निर्दोष सिखों, हिन्दुओं को मारा है और किस प्रकार सिखों ने भी वस चलते कोई कसर नहीं छोड़ी है। यह मार–काट इसलिए नहीं की गयी कि फलाँ आदमी दोषी है, वरन इसलिए कि फलाँ आदमी हिन्दू है या सिख है या मुसलमान है। बस किसी व्यक्ति का सिक्ख या हिन्दू होना मुसलमानों द्वारा मारे जाने के लिए काफी था और इसी तरह किसी व्यक्ति का मुसलमान होना ही उसकी जान लेने के लिए पर्याप्त तर्क था। जब स्थिति ऐसी हो तो हिन्दुस्तान का 'ईश्वर' ही मालिक है।



ऐसी स्थिति में हिन्दुस्तान का भविष्य बहुत अन्धकारमय नजर आता है। इन धर्मों ने हिन्दुस्तान का बेड़ा गर्क कर दिया है और अभी पता नहीं कि यह धार्मिक दंगे भारतवर्ष का पीछा कब छोड़ेंगे। इन दंगों ने संसार की नजरों में भारत को बदनाम कर दिया है और हमने देखा है कि अंधविश्वास के बहाव में सभी बह जाते हैं। कोई बिरला ही हिन्दू, मुसलमान या सिख होता है, जो अपना दिमाग ठंडा रखता है, बाकी सबके सब धर्म के यह नामलेवा अपने नामलेवा धर्म के रौब को कायम रखने के लिए डण्डे लाठियां, तलवारें–छुरें हाथ में पकड़ लेते हैं और आपस में सर फोड़–फोड़कर मर जाते हैं। बाकी कुछ तो फांसी चढ़ जाते हैं और कुछ जेलों में फेंक दिये जाते हैं। इतना रक्तपात होने पर इन 'धर्मजनों' पर अंग्रेजी सरकार का डण्डा बरसता है और फिर इनके दिमाग का कीड़ा ठिकाने आ जाता है।

यहां तक देखा गया है, इन दंगों के पीछे सांप्रदायिक नेताओं और अखबारों का हाथ है। इस समय हिन्दुस्तान के नेताओं ने ऐसी लीद की है कि चुप ही भली। वही नेता जिन्होंने भारत को स्वतंत्र कराने का बीड़ा अपने सिरों पर उठाया हुआ था और जो 'समान राष्ट्रीयता' और 'स्वराज्य–स्वराज्य' के दमगजे मारते नहीं थकते थे, वही या तो अपने सिर छिपाये चुपचाप बैठे हैं या इसी धर्मान्धता के बहाव में बह चले हैं। सिर छिपाकर बैठने वालों की संख्या भी क्या कम है? लेकिन ऐसे नेता जो सांप्रदायिक आन्दोलन में जा मिले हैं, जमीन खोदने से सैंकड़ों निकल आते हैं। जो नेता हृदय से सबका भला चाहते हैं, ऐसे बहुत ही कम हैं और सांप्रदायिकता की ऐसी प्रबल बाढ़ आयी हुई है कि वे भी इसे रोक नहीं पा रहे। ऐसा लग रहा है कि भारत में नेतृत्व का दिवाला पिट गया है।

दूसरे सज्जन जो सांप्रदायिक दंगों को भड़काने में विशेष हिस्सा लेते रहे हैं, अखबार वाले हैं। पत्रकारिता का व्यवसाय किसी समय बहुत ऊंचा समझा जाता था। आज बहुत ही गन्दा हो गया है। यह लोग एक–दूसरे के विरुद्ध बड़े मोटे–मोटे शीर्षक देकर लोगों की भावनाएं भड़काते हैं और परस्पर सिर फुटौव्वल करवाते हैं। एक दो जगह ही नहीं, कितनी ही जगहों पर इसलिए दंगे हुए हैं कि स्थानीय अखबारों ने बड़े उत्तेजनापूर्ण लेख लिखे हैं। ऐसे लेखक बहुत कम है जिनका दिल व दिमाग ऐसे दिनों में भी शांत रहा हो।

अखबारों का असली कर्तव्य शिक्षा देना, लोगों से संकीर्णता निकालना, सांप्रदायिक भावनाएँ हटाना, परस्पर मेल–मिलाप बढ़ाना और भारत की साझी राष्ट्रीयता बनाना था लेकिन इन्होंने अपना मुखय कर्त्तव्य अज्ञान फैलाना, संकीर्णता का प्रचार करना, सांप्रदायिक बनाना, लड़ाई–झगड़े करवाना और भारत की साझी

राष्ट्रीयता को नष्ट करना बना लिया है। यही कारण है कि भारतवर्ष की वर्तमान दशा पर विचार कर आंखों से रक्त के आँसू बहने लगते हैं ओर दिल में सवाल उठता है कि 'भारत का बनेगा क्या?'

जो लोग असहयोग के दिनों में जोश व उभार को जानते हैं, उन्हें यह स्थिति देख रोना आता है। कहां थे वे दिन कि स्वंतन्त्रता की झलक सामने दिखाई देती थी और कहाँ आज यह दिन कि स्वराज्य एक सपना मात्र बन गया है। बस यही लाभ है, जो इन दंगों से अत्याचारियों को मिला है। जिसके अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया था, कि आज गयी, कल गयी, वही नौकरशाही आज अपनी जड़ें इतनी मजबूत कर चुकी हैं कि उसे हिलाना कोई मामूली काम नहीं है।

यदि इन सांप्रदायिक दंगों की जड़ खोजें तो हमें इसका कारण आर्थिक ही जान पड़ता है। असहयोग के दिनों में नेताओं व पत्राकारों ने ढेरों कुर्बानियां दीं। उनकी आर्थिक दशा बिगड़ गयी थी। असहयोग आन्दोलन के धीमा पड़ने पर नेताओं पर अविश्वास-सा हो गया जिससे आजकल के बहुत से सांप्रदायिक नेताओं के धन्धे चौपट हो गये। विश्व में जो भी काम होता है, उसकी तह में पेट का सवाल जरूर होता है। कार्ल मार्क्स के तीन बड़े सिद्धांतों में से यह एक मुख्य सिद्धांत है। इसी सिद्धांत के कारण ही तबलीग, तनकीम, शुद्धि आदि संगठन शुरू हुए और इसी कारण से आज हमारी ऐसी दुर्दशा हुई, जो अवर्णनीय है।

बस, सभी दंगों का इलाज यदि कोई हो सकता है वह भारत की आर्थिक दशा में सुधार से ही हो सकता है। दरअसल भारत के आम लोगों की आर्थिक दशा इतनी खराब है कि एक व्यक्ति दूसरे को चवन्नी देकर किसी ओर को अपमानित करवा सकता है। भूख और दुख से आतुर होकर मनुष्य सभी सिद्धांत ताक पर रख देता है। सच है, मरता क्या न करता। लेकिन वर्तमान स्थिति में आर्थिक सुधार होना अत्यंत कठिन है क्योंकि सरकार विदेशी है और लोगों की स्थिति को सुधरने नहीं देती। इसीलिए लोगों को हाथ धोकर इसके पीछे पड़ जाना चाहिये और जब तक सरकार बदल न जाये, चैन की सांस न लेना चाहिए।

लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की जरूरत है। गरीब, मेहनतकशों व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूंजीपति हैं। इसलिए तुम्हें इनके हथकंडों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी गरीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताकत अपने हाथों में लेने का प्रयत्न करो। इन यत्नों से तुम्हारा नुकसान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी जंजीरें कट जायेंगी और तुम्हे आर्थिक स्वतंत्रता मिलेगी।

जो लोग रूस का इतिहास जानते हैं, उन्हें मालूम है कि जार के समय वहाँ भी ऐसी ही स्थितियाँ थी। वहां भी कितने ही समुदाय थे जो परस्पर जूत-पतांग करते रहते थे। लेकिन जिस दिन से वहाँ श्रमिक-शासन हुआ है, वहां नक्शा ही बदल गया है। अब वहाँ कभी दंगे नहीं हुए। अब वहाँ सभी को 'इन्सान' समझा जाता है, 'धर्मजन' नहीं। जार के समय लोगों की आर्थिक दशा बहुत ही खराब थी। इसलिए सब दंगे-फसाद होते थे। लेकिन अब रूसियों की आर्थिक दशा सुधर गयी है और उनमें वर्ग-चेतना आ गयी है इसलिए अब वहां से कभी किसी दंगे की खबर नहीं आयी।

इन दंगों में वैसे तो बड़े निराशाजनक समाचार सुनने में आते हैं, लेकिन कलकत्ते के दंगों में एक बात बहुत खुशी की आयी। वह यह कि वहां दंगों में ट्रेड यूनियन के मजदूरों ने हिस्सा नहीं लिया और न ही वे परस्पर गुत्थमगुत्था ही हुए, वरन् सभी हिन्दू-मुसलमान बड़े प्रेम से कारखानों आदि में उठते-बैठते और दंगे रोकने के भी यत्न करते रहे। यह इसलिए कि उनमें वर्ग-चेतना थी और वे अपने वर्गहित को अच्छी तरह पहचानते थे। वर्गचेतना का यही सुन्दर रास्ता है, जो सांप्रदायिक दंगे रोक सकता है।

यह खुशी का समाचार हमारे कानों को मिला है कि भारत के नवयुवक अब वैसे धर्मों से जो परस्पर लड़ाना व घृणा करना सिखाते हैं, तंग आकर हाथ धो रहे हैं। उनमें इतना खुलापन आ गया है कि वे भारत के लोगों को धर्म की नजर से हिन्दू, मुसलमान या सिख रूप में नहीं, वरन् सभी को पहले इन्सान समझते है और फिर भारतवासी। भारत के युवकों में इन विचारों के पैदा होने से पता चलता है कि भारत का भविष्य सुनहला है। भारतवासियों को इन दंगों आदि को देखकर घबराना नहीं चाहिए। उन्हें यत्न करना चाहिए कि ऐसा वातावरण ही न बने, और दंगें हों ही नहीं।

1914-15 के शहीदों ने धर्म को राजनीति से अलग कर दिया था। वे समझते थे कि धर्म व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है इसमें दूसरे का कोई दखल नहीं। **शेष पृष्ठ 8 पर**

काकोरी केस के क्रान्तिकारी शहीद

– आदित्य

1927, दिसंबर में काकोरी के शहीदों को फांसी दी गई थी। 17 दिसंबर को राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी गोंडा जेल में शहीद हुए और 19 दिसंबर को रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने गोरखपुर जेल में, उनके सबसे करीबी साथी आशफ़ाकउल्ला ने फैजाबाद जेल में और रोशनसिंह ने इलाहाबाद जेल में फांसी के फन्दे को गले लगाया। इनका दोष क्या था? ये नौजवान क्रान्तिकारी अपने देश को अंग्रेजों की गुलामी से आजाद कराना चाहते थे। 9 अगस्त, 1925 को एक छोटे से स्टेशन काकोरी से एक पैंसजर ट्रेन चली। काकोरी लखनऊ से आठ मील की दूरी पर था। ट्रेन कुछ दूर चली ही थी कि बोगी में बैठे तीन नौजवानों ने गाड़ी रोक ली और अन्य साथियों के साथ मिलकर ब्रिटिश सरकार का खजाना लूट लिया। उन्होंने गोलियां चलाई लेकिन यात्रियों की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखा। हमारे देश पर शासन करने वाले अंग्रेजों का मुकाबला करने के लिए इस क्रांतिकारी जत्थे को धन की जरूरत थी। यह एक देशभक्ति के जज्बे से भरा कारनामा था, मकसद था अंग्रेजों की गुलामी से देश की आजादी। अंग्रेजी शासन ने इसे काकोरी षडयंत्र केस कहा और क्रान्तिकारी वीरों को षड्यंत्रकारी बताकर उन्हें फांसी की सजा सुनाई। उनके शहादत दिवस के मौके हम उन शहीदों को याद करते हुए उनके विचारों और उनके संघर्ष को फिर ताजा कर रहे हैं।

शहीद रामप्रसाद 'बिस्मिल' सुगठित शरीर वाले अत्यंत साहसी व्यक्ति थे, यह तो सभी जानते हैं, लेकिन कम लोगों को ही इस बात की जानकारी है कि उन्होंने कई किताबें भी लिखी हैं। वे उर्दू के माने हुए शायर भी थे। लोगों की कठिन जिन्दगी को उन्होंने करीब से देखा था क्योंकि उन्हें खुद भी एक समय आधा पेट खाकर काफी मेहनत मशक्कत वाले काम करने पड़े थे और बड़ी मुश्किलों में जिन्दगी गुजारनी पड़ी थी। यहां तक कि कई बार उन्हें घास खाकर काम चलाना पड़ा था। लेकिन इन सबके बाद भी उनमें देश की आजादी का जज्बा हिलोरें मारता रहता था। उसे हासिल करने के लिए उन्होंने अन्य साथियों के साथ मिलकर एक क्रांतिकारी दल बनाया और युद्ध कौशल में निपुणता प्राप्त की। वे ऐसे निर्भीक योद्धा थे कि जब उन्हें फांसी की सजा सुनाई गई तो वे उपेक्षा से हंस दिये। फांसी के तख़्ते पर खड़े होकर उन्होंने जैसे घोषणा की, ''मैं ब्रिटिश साम्राज्य का नाश चाहता हूँ।'' संगठन और अपने क्रांतिकारी साथियों का भेद खोलने के लिए उन्हें बार–बार लालच दिया गया, उनसे कहा गया कि उन्हें सरकारी खर्च पर इंग्लैंड भेज दिया जायेगा और वहां उनकी कानून की पढ़ाई का खर्च सरकार उठायेगी लेकिन उन्होंने हुकूमत के सारे प्रस्तावों को ठोकर मार दी और शान के साथ मौत को गले लगाना पसंद किया। उन्होंने कहा कि वे बार–बार जन्म लेंगे और उनका उद्देश्य होगा संसार में पूर्ण स्वतंत्रता। वे स्पष्ट तौर पर यह कहते थे कि प्रकृति की देन पर सबका एक सा अधिकार होना चाहिए और किसी को किसी पर शासन करने का हक न हो। वे हिन्दू और मुस्लिम एकता के बहुत बड़े हिमायती भी थे। फांसी के पूर्व उन्होंने अपने संदेश में कहा था कि उनका यादगार दिवस मनाने के लिए हिन्दू और मुसलमान इकट्ठा होकर आयें।

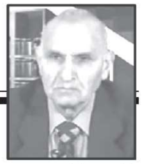


रामप्रसाद बिस्मिल के साथ शहादत देने वाले दूसरे क्रांतिकारी थे अशफ़ाक उल्ला खान वारसी। अशफाक रामप्रसाद बिस्मिल के बहुत करीबी थे और दोनों के बीच दोस्ती और प्रेम का बड़ा गहरा रिशता था। ऐसा इसलिए था क्योंकि उनके विचारों में भी समानता थी। बिस्मिल की ही तरह अशफ़ाक भी शायर थे। धर्म को बीच में लाये बिना दोनों ने एक होकर आजादी की लड़ाई लड़ी और अपने प्राण देश के लिए कुर्बान कर दी। कहा जाता है कि फांसी के पहले वाले दिन अशफ़ाक खूब सजे–संवरे थे, हंस कर अपने मिलने वाले साथियों को बताते 'कल मेरी शादी होने वाली है।' उन्हें भी मौत का कोई डर नहीं था। देशवासियों के लिए उन्होंने जेल से भेजे अपने संदेश में कहा था, ''लोग कहते हैं कि हम आतंकवाद फैलाना चाहते हैं, यह गलत है। हम तो आजादी हासिल करने के लिए देशभर में क्रांति लाना चाहते हैं।'' क्रान्तिकारी शहीद नायक भगतसिंह ने उनके बारे में कहा था कि अशफ़ाक के बलिदान ने यह दिखा दिया कि मुस्लिम नौजवान हिन्दू नौजवानों की ही तरह देश के लिए अपने प्राणों को उत्सर्ग कर सकता है। अब यह कहने की हिम्मत किसी में नहीं होनी चाहिए कि मुसलमानों पर



शेष पृष्ठ 8 पर

सर आइजैक न्यूटन



-डॉ. हरीश मल्होत्रा

सर आइजैक न्यूटन का जन्म 25 दिसंबर, 1642 (जूलियन कैलेंडर के अनुसार) इंगलैंड के वूल्जथार्प में हुआ था। उनके जन्म से पहले ही उनके पिता का निधन हो गया था। तीन साल की उम्र तक उनकी मां ने उनको पाला-पोसा। फिर उसने दोबारा शादी की और बालक न्यूटन को उसकी दादी को दे दिया। बूढ़ी दादी को बच्चे से बहुत प्यार था, इसलिए ज्यादा लाड़-प्यार के कारण न्यूटन पढ़ाई में कमजोर, शरीर से मन्दबुद्धि और शर्मीले स्वभाव के हो गये।



1654 में उन्हें बोल्स के ग्रामर स्कूल में भर्ती कराया गया। वहां भी वह न तो पढ़ाई में अव्वल रहे और न ही शारीरिक रूप से मजबूत बन पाए। उसका अपने सहपाठियों के साथ ज्यादा मेल-मिलाप नहीं था। उसके सहपाठियों में से एक लड़का जो शारीरिक रूप से मजबूत और दूसरे लड़कों की मार-पिटाई करता रहता था, एक दिन उसने न्यूटन की गर्दन पकड़ ली। दोनों गुत्थम-गुत्था हो गए। दर्शकों को बहुत आश्चर्य हुआ जब न्यूटन ने उसे जमीन पर गिरा दिया। इससे न्यूटन को अपने साथियों के बीच संमान प्राप्त हुआ और उनमें आत्मविश्वास भी आया। इससे न्यूटन के जीवन में एक महत्वपूर्ण मोड़ आया। उनकी पढ़ाई में भी रूचि हो गई और एक साल के भीतर ही वह अपनी कक्षा में अव्वल आ गए।

1656 में उनकी मां दूसरी बार विधवा हो गयी। उनकी आजीविका जमीन पर निर्भर थी, इसलिए मां ने न्यूटन को स्कूल छुड़वाकर खेतों में काम करने को कहा। न्यूटन को गणित में कुछ हद तक रुचि हो गई थी और उन्हें भूमि जोतने या मवेशियों को चराने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। मां और बेटा रूठे ही रहते थे। उनके मामा कैम्ब्रिज के ट्रिनिटी कॉलेज के फेलो थे। उन्होंने न्यूटन से बात करके अपनी बहन से न्यूटन को वहां पढ़ाने की जिद की। 1660 में न्यूटन को फिर से स्कूल में भर्ती कराया गया। उन्होंने अपनी पढ़ाई में कड़ी मेहनत की और 1661 में उन्होंने ट्रिनिटी कॉलेज में प्रवेश लिया। 1665 में उन्होंने बी.ए. की उपाधि प्राप्त की। वहां कॉलेज में पढ़ते समय, गणित के प्रोफेसर बैरो के साथ उनका गहरा प्रेमपूर्ण रिश्ता विकसित हो गया। प्रो. बैरो न्यूटन की गणितीय प्रतिभा से बहुत प्रभावित थे और न्यूटन को उनसे काफी प्रोत्साहन मिला। यहां पढाई के दौरान न्यूटन बैरो की संगति में खूब चमके। 1665-66 में उन्हें कॉलेज से घर लौटना पड़ा, लेकिन उन्हें पढ़ाई का गहरा चस्का लग चुका था। एक दिन जब वे बगीचे में घूम रहे थे, तभी उन्होंने देखा कि पेड़ से एक सेब टूटकर जमीन पर गिरते देखा। वे तो देखते ही सोच में पड़ गए। इस चिंतन का परिणाम प्रकृति का वह नियम निकला जिसे अब गुरुत्वाकर्षण का नियम कहा जाता है। कुछ वर्षों के बाद इस नियम पर अच्छी तरह से विचार किया गया और 1685-86 में इसे प्रकाशित किया गया। 1665 में न्यूटन ने द्विपद प्रमेय की खोज की। इंटीग्रल कैलकुलस 1666 में प्रकाशित हुआ था।

1667 में वे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के फेलो के रूप में विश्वविद्यालय लौट आये। कुछ वर्षों तक वे ऑप्टिकल शक्ति पर शोध करते रहे और इन शोधों के आधार पर उन्होंने एक परावर्तक दूरबीन बनाई और बृहस्पति के चारों ओर घूमते हुए चंद्रमाओं को देखा।

न्यूटन की दूरबीर की अर्ध-व्यास 6 इंच थी। अब विश्व की सबसे बड़ी दूरबीन पालोमर (कैलिफोर्निया) वेधशाला में स्थापित है, इसके दर्पण का अर्ध-व्यास 200 इंच है। हालांकि, यह उसी सिद्धांत पर बनाया गया है, जिस पर न्यूटन ने अपनी पहली दूरबीन बनाई थी। उसी समय न्यूटन ने प्रकाश को एक प्रिज्म से गुजारा और बताया कि प्रकाश सात रंगों से मिलकर बना है। 1669 में न्यूटन के प्रिय प्रोफेसर बैरो ने इस्तीफा दे दिया और न्यूटन को उनकी जगह गणित का प्रोफेसर नियुक्त कर दिया गया। उस समय न्यूटन केवल 26 वर्ष के थे।

न्यूटन के दूरबीन के आविष्कार ने उन्हें वैज्ञानिक समुदाय में प्रसिद्ध कर दिया और 1671 में उन्हें विश्व प्रसिद्ध रॉयल सोसाइटी का सदस्य चुना गया। 1679 में न्यूटन की मां की मृत्यु हो गई। 1684 में न्यूटन ने अपने मित्र हैली से प्रेरित होकर पदार्थ के गुरुत्वाकर्षण बल पर अपना काम प्रकाशित किया। 1687 में यह कृति अच्छे विवरण के साथ पुस्तक रुप में प्रकाशित हुई। गुरुत्वाकर्षण का यह सिद्धांत विज्ञान की रीढ़ है और विज्ञान में न्यूटन की महानता इसी सिद्धांत के कारण है।

1689 में वे विश्वविद्यालय की ओर से संसद सदस्य

बने। वह 1703 में रॉयल सोसाइटी के अध्यक्ष बने और अगले 25 वर्षों तक हर साल चुने जाते रहे। 1705 में महारानी ''ऐनी'' कैंब्रिज विश्वविद्यालय के निरीक्षण के लिए गई। जहां न्यूटन को 'सर' की उपाधि दी गई।

1692-94 तक, न्यूटन को नर्वस ब्रेकडाउन का सामना करना पड़ा। मानव जीवन के लिए संतुलित विकास आवश्यक है। प्रकृति को किसी की परवाह नहीं है। प्रकृति के नियम स्पष्ट एवं अपरिवर्तनीय हैं, सब पर एक समान लागू होते हैं। जो लोग बहुत अधिक सोचते हैं और शरीर पर कम ध्यान देते हैं, उन्हें आमतौर पर मानसिक बीमारी लग ही जाती है, चाहे वह कोई बड़ा महापुरुष हो, कोई बड़ा दार्शनिक या वैज्ञानिक हो अथवा कोई प्रसिद्ध पहलवान हो। न्यूटन भी इसी समस्या का शिकार हुए और उनके मित्रों तथा विज्ञान के सभी क्षेत्रों को दो वर्षों तक कष्ट सहना पड़ा।

1694 में वे स्वस्थ हो गये और 1695 में वह सरकारी टकसाल के वार्डन बन गये और चार साल बाद मास्टर या शीर्ष अधिकारी बने। वे शेष जीवन इसी पद पर रहे, लेकिन इस कार्य के साथ-साथ वे अपने गणितीय शोध भी पूरे करते रहे।

न्यूटन की प्रमुख उपलब्धियां, जिन्होंने आइंस्टाइन के क्षेत्र में प्रवेश करने तक उन्हें विज्ञान का विशाल स्तंभ बनाए रखा, ये हैं: 1. यदि कोई वस्तु स्थिर है या सीधी रेखा में चल रही है। वह तब तक उसी स्थिति में बनी रहेगी, जब तक कि उस पर कोई बाहरी बल न लगाया जाए।

-इसकी गति लगाए गए बल के समानुपाती होगी और उसी रेखा में होगी जिसमें बल लगाया जा रहा है। यदि बल घटेगा तो विस्थापन भी कम होगा। यदि बल अधिक हो जायेगा तो विस्थापन भी उसी अनुपात में बढ़ जायेगा।

- प्रत्येक क्रिया की एक प्रतिक्रिया होती है, जो क्रिया के परिणाम के बिल्कुल बराबर होती है और उसकी दिशा उससे उलट होती है। जब हम पानी में तैरते हैं तो हम पानी को पीछे धकेलते हैं। इस काम का प्रतिफल हमें आगे बढ़ाता है। इसी प्रकार जब हम जमीन पर कदम रखते हैं तो हमारे पैरों का बल जमीन पर नीचे और पीछे की ओर होता है। उनकी प्रतिक्रिया हमें आगे बढ़ाती है।

ये नियम यांत्रिकी या थर्मो-डायनामिक्स के बुनियादी नियम हैं।

2. न्यूटन की दूसरी उपलब्धि गुरुत्वाकर्षण बल है। इसके अनुसार पदार्थ का प्रत्येक अणु दूसरे अणु को अपनी ओर आकर्षित करता है। यह आकर्षण पदार्थ की मात्रा के समानुपाती होता है। जितनी अधिक पदार्थ की मात्रा, उसमें उतनी ही अधिक आकर्षण शक्ति होगी, और यह आकर्षण विपरीत रुप से, पदार्थ के बीच की दूरी के वर्ग के समानुपाती होता है।

यदि दो वस्तुओं के बीच की दूरी दोगुनी और फिर चौगुनी कर दी जाए तो खिंचाव 1/4 और 1/16 हो जाता है। दूरी जितनी अधिक होगी, खिंचाव उतना ही कम होगा। आकर्षण का संबंध पदार्थ की मात्रा और अंतर से होता है। इस नियम का उपयोग करके न्यूटन ने पृथ्वी से चंद्रमा और सूर्य की दूरी का अनुमान लगाया। अपने गणितीय ज्ञान के आधार पर उन्होंने यह भी पता लगाया कि गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर तथा पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूम रही है, और यह घूमना एक वृत्त में नहीं है, बल्कि पृथ्वी 23 डिग्री के झुकाव पर घूम रही है। न्यूटन की खोजें उन उपकरणों की नींव बन गई, जो आज हमें चंद्रमा पर ले जाते हैं और जो भविष्य में मनुष्यों को कई ग्रहों पर ले जाएंगे।

1969 में चंद्रमा पर उतरने वाले नील आर्मस्ट्रांग जब मुंबई आए, तो उनसे पूछा गया कि किस-किस वैज्ञानिक की खोजों ने उन्हें चंद्रमा तक पहुंचने में मदद की, उन्होंने पहला नाम न्यूटन का लिया।

न्यूटन की एक ओर उल्लेखनीय उपलब्धि, प्रकाश की गति से संबंधित है। उनके अनुभव के अनुसार प्रकाश छोटे-छोटे कणों से बना होता है। ये कण एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकंड की गति से चलते हैं।

चाहे विज्ञान हो या मानविकी के अन्य क्षेत्र, विकास तो जारी रहता है। परिवर्तन या विकास प्रकृति का मूल नियम है। लेकिन ईंट पर ईंट रखनी पड़ती है। महल बनाने में सबसे बड़ा हिस्सा उसी का होता है, जो पहली ईंट रखता है।

आइंस्टाइन ने न्यूटन के बनाये चबूतरे पर खड़े होकर दूसरी मंजिल की नींव रखी। कोई ओर हीरो आएगा, वो इंसान को तीसरी मंजिल पर ले जाएगा। न्यूटन को यह सब पता था। उन्होंने खुद पहले कहा था कि हम अभी भी ज्ञान के समुद्र के किनारे की रेत से घोंघे और सीपियाँ ही इकट्ठी कर रहे हैं। अभी तो ज्ञान का विशाल सागर हमारे सामने है। इन महापुरुषों के जीवन से यह सीख मिलती है कि जीवन की सफलता ज्ञान का पुजारी बनने में है, लक्ष्मी का पुजारी बनने में नहीं।

न्यूटन एक शांत स्वभाव के व्यक्ति थे। ऐसा कहा जाता है कि एक रात उनके पालतू जानवर ने उनकी मेज पर जल रही

मोमबत्ती को गिरा दिया, जिससे उनकी कई वर्षों की कड़ी मेहनत और नई खोजों के कागजात जलकर राख हो गये। इस शांत आदमी ने पालतू जानवर से बस इतना कहा, ''तुम नहीं जानते कि तुमने मेरे जीवन के वर्षों की मेहनत को राख में मिला दिया है।''

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि न्यूटन ने 12 साल की उम्र में स्कूल जाना शुरु किया था और स्कूल में भी वह बहुत योग्य छात्र नहीं था। स्कूल में वह बस ड्राइंग करते रहते थे या अलग-अलग चीजों के साथ यंत्रवत छेड़छाड़ करते थे। घर में अकेले रहने के कारण उन्हें एकांत अधिक पसंद आने लगा।

1665 की गर्मियों में पूरे इंग्लैंड में प्लेग फैल गया। परिणामस्वरुप, न्यूटन को अपने जन्मस्थान वूल्जथार्प लौटना पड़ा। प्लेग नामक महामारी से देश की लगभग दस प्रतिशत जनसंख्या मर गयी। वूल्जथार्प लौटकर, न्यूटन अपनी मां के साथ अपने पैतृक फार्महाउस में रहने लगे। उस समय सरकार ने पूरे देश के स्कूल कॉलेजों को बंद कर दिया था और कैंब्रिज यूनिवर्सिटी को भी करीब डेढ़ साल के लिए बंद कर दिया गया। ऐसा माना जाता है कि न्यूटन के जीवन का यह काल सबसे सार्थक सिद्ध हुआ। इसी अवधि के दौरान उन्होंने अपनी महत्वपूर्ण खोजें की। 1665-66 ई. के काल को न्यूटन के जीवन का स्वर्ण-काल कहा जाता है।

कहा जाता है कि एक दिन जब न्यूटन अपने मित्र जॉन विकिल्स के साथ कैंब्रिज में मेला देखने गये तो उन्हें मेले से एक प्रिज्म पसंद आया, जिसे उन्होंने खरीद लिया। प्रयोगशाला में लौटकर न्यूटन ने इस प्रिज्म से प्रकाश के साथ प्रयोग करना शुरू किया। प्रकाश के गुणों पर प्रयोग करते समय वह कभी-कभी अपना भोजन भी भूल जाते थे। उन्होंने बिना भूख-प्यास महसूस किये दिन-रात प्रयोग जारी रखा। एक दिन वह अपने अंधेरे कमेरे में बैठा था, तभी उसने देखा कि खिड़की के अंदर पर्दों की दरारों से सूरज की किरणें आ रही हैं और शीश प्रिज्म से टकरा रही हैं। प्रिज्म से टकराने के बाद ये प्रकाश किरणें परावर्तित हो जाती हैं।

जैसा कि आप जानते ही होंगे, प्रिज्म एक त्रिकोणीय आकार का दर्पण या कांच का टुकड़ा होता है। न्यूटन ने देखा कि प्रिज्म से बाहर निकलने के बाद प्रकाश की किरणें कई अलग-अलग रंगों के रूप में दिखाई देती हैं। ये रंग ठीक उसी क्रम में थे जैसे बारिश के बाद आसमान में बने इंद्रधनुष के रंग होते हैं। यह सब देखने के बाद न्यूटन ने निष्कर्ष निकाला कि सफेद प्रकाश में सात रंग होते हैं या कहें कि सूर्य का प्रकाश सात रंगों से मिलकर बना होता है। इन सात रंगों के नाम हैं:- बैंगनी, जामुनी, नीला, हरा, पीला, नारंगी और लाल।

न्यूटन ने स्पेक्ट्रम को सफेद प्रकाश के सात रंगों के अनुक्रम या स्पेक्ट्रम के रूप में वर्णित किया। उन्होंने इस स्पेक्ट्रम के हर रंग की चौड़ाई को चित्रित किया। उन्होंने कहा कि हम अपने आसपास मौजूद वस्तुओं से परावर्तित प्रकाश के परिणामस्वरूप, वे वस्तुएं देख पा रहे हैं। जब प्रकाश की किरणें किसी वस्तु पर पड़ती हैं, तो हमें वह वस्तु दिखाई देती है। यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि जिज्ञासु मन होने के कारण उन्होंने अपने प्रयोग को बार-बार दोहराया।

इस उद्देश्य से उन्होंने दो प्रयोग किये। पहले प्रयोग में उन्होंने श्वेत प्रकाश को प्रिज्म से गुजारा। प्रिज्म से गुजरने के बाद प्रकाश सात रंगों में विभाजित हो गया। दूसरे प्रयोग में उन्होंने इन सात रंगों को दूसरे प्रिज्म में से गुजारा और पाया कि ये किरणें फिर से सफेद रोशनी में बदल गई हैं। इन प्रयोगों के आधार पर न्यूटन ने प्रकाश के परिवर्तन के सिद्धांत के अनुसार एक दूरबीन तैयार की। उन्होंने इस दूरबीन के सभी हिस्से अपने हाथों से तैयार बनाये और उसमें फिट किया। इस दूरबीन के आविष्कार ने न्यूटन को वैज्ञानिक क्षेत्रों में बहुत लोकप्रिय बना दिया। 1671 ई. में इंग्लैंड के राजा चार्ल्स II ने न्यूटन द्वारा तैयार दूरबीन को स्वयं देखा और उसमें अपनी विशेष रूचि दिखाई। न्यूटन ने अपनी दूरबीन से बृहस्पति की परिक्रमा कर रहे उपग्रहों या चंद्रमाओं को देखा।

इतने महान वैज्ञानिक होने के बावजूद भी न्यूटन बहुत विनम्र स्वभाव के थे। इस जीवन का खेल एक न एक दिन समाप्त हो जाता है। बड़े-बड़े विद्धवान, दार्शनिक, मार्गदर्शक और दुनिया का भला चाहने वाले वैज्ञानिक कभी नहीं मरते। उनकी खोजों का आनंद लेते हुए, हम न केवल उन्हें याद करते हैं बल्कि उन्हें हर दिन धन्यवाद भी देते हैं। 20 मार्च 1727 को सर आइजैक न्यूटन ने यह शरीर त्याग दिया और हमेशा के लिए हमसे दूर चले गये। उस समय उनकी उम्र 85 वर्ष थी। ये महापुरुष संसार की प्रसिद्धि के भूखे नहीं हैं। लेकिन दुनिया को भी अपना कर्तव्य निभाना होगा। अलग-अलग देशों में स्तुति के अलग-अलग रिवाज हैं। इंगलैंड के रीति-रिवाजों के अनुसार न्यूटन के शव को वेस्टमिनिस्टर एवे के कब्रिस्तान में दफनाया गया और वहीं पर उनका स्मारक बनाया गया। इसी तरह, ट्रिनिटी कॉलेज कैम्ब्रिज और रॉयल सोसाइटी में भी

न्यूटन के स्मारक हैं। लेकिन उनकी असली स्मृति उन युवाओं की बुद्धिमत्ता में निहित है, जो न्यूटन के नक्शेकदम पर चलते हुए दुनिया के विकास के लिए अपना जीवन समर्पित कर रहे हैं।

अक्टूबर-दिसंबर की कुछ महत्वपूर्ण तिथियाँ

22 अक्टूबर (1900) शहीदे आज़म भगत सिंह के साथी व काकोरी काण्ड के शहीद अशफ़ाक उल्ला का जन्मदिवस।

26 अक्टूबर (1890) अन्याय और जुल्म के खिलाफ संघर्षरत, भारतीय आज़ादी के प्रेणता तथा वाणी और कलम के सिपाही, गणेश शंकर विद्यार्थी का जन्मदिवस।

27 अक्टूबर (1904) शहीद क्रान्तिकारी यतीन्द्रनाथ दास का जन्मदिवस।

7 नवंबर (1917) अक्टूबर क्रान्ति (रूसी क्रान्ति) दिवस। मानवता की मुक्ति का वह महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दिवस, जब आम जनता के अपने राज्य की स्थापना हुई थी। महान क्रान्तिकारी व्लादीमिर इल्लीच लेनिन के नेतृत्व में रूसी क्रान्ति संपन्न हुई थी और सोवियत संघ की स्थापना हुई थी।

13 नवंबर :- जनपक्षध्र लेखक एम्वं कवि मुक्तिबोध का जन्मदिवस।

28 नवंबर (1820) (मित्रता दिवस) फ्रेडरिक एंगेल्स का जन्मदिवस। जनता के मुक्तिकामी दर्शन के प्रणेता, जर्मनी के राइन प्रान्त में जन्मे और कार्ल मार्क्स के अनन्य मित्र एवं सहयोगी। इनका जन्मदिवस पूरी दुनिया में मित्रता दिवस के रूप में मनाया जाता है।

17 दिसंबर (1927) काकोरी काण्ड के शहीद राजेन्द्र लाहिड़ी का शहादत दिवस।

19 दिसंबर (1927) काकोरी काण्ड शहादत दिवस। आज़ादी के इतिहास का वह काला दिन जब काकोरी काण्ड के तीन वीर सपूतों रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाक उल्ला खाँ एवं रोशन सिंह को फांसी दी गयी थी।

21 दिसंबर (1879) लेनिन के सहयोगी और सोवियत संघ के प्रमुख नेता जोसेफ स्तालिन का जन्मदिवस।

26 दिसंबर (1893) मानवता की मुक्ति के प्रतीक पुरुष एवं चीनी क्रांति के जनक माओ त्से-तुड. का जन्मदिवस।

''तर्कशील पथ'' पढ़े, ''तर्कशील '' बने।

पृष्ठ 3 का शेष न ही इसे राजनीति में घुसाना चाहिए क्योंकि यह सरबत को मिलकर एक जगह काम नहीं करने देता। इसलिए गदर पार्टी जैसे आन्दोलन एकजुट व एकजान रहे, जिसमें सिक्ख बढ़-चढ़कर फाँसियों पर चढ़े और हिन्दू मुसलमान भी पीछे नहीं रहे।

इस समय कुछ भारतीय नेता भी मैदान में उतरे हैं जो धर्म को राजनीति से अलग करना चाहते हैं। झगड़ा मिटाने का यह भी एक सुन्दर इलाज है और हम इसका समर्थन करते हैं।

यदि धर्म को अलग कर दिया जाये तो राजनीति पर हम सभी इकट्ठे हो सकते हैं। धर्मों में हम चाहे अलग-अलग ही रहें। हमारा ख्याल है कि भारत के सच्चे हमदर्द हमारे बताये इलाज पर जरूर विचार करेंगे और भारत का इस समय जो हो रहा है, उससे हमें बचा लेंगे।

अंधविश्वास, रूढ़िवाद व तमाम कुरीतियों के खिलाफ आवाज बुलंद करें और बेहतर समाज बनाने के लिए संघर्ष करें।

पृष्ठ 4 का शेष विश्वास नहीं करना चाहिए।



रोशन सिंह को भी काकोरी केस में फांसी दी गई थी लेकिन उनकी शहादत के बारे में बहुत कम लोग जानते हैं। वे जिन्दादिल और बहादुर इंसान थे। उनका एक शेर है-''जिन्दगी जिन्दादिली को जानिये रोशन! वरना कितने मरे और पैदा होते जाते हैं।''

राजेन्द्र लाहिड़ी को अपने अन्य साथियों से दो दिन पहले 17 दिसंबर को ही फांसी दे दी गई। वे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्र जीवन में ही थे कि क्रान्तिकारी कामों से जुड़ गये। वे देखने में पतले दुबले कमजोर से लगते थे लेकिन मजबूती, साहस और पक्के इरादे के मामले में वह बेजोड़ थे। गाड़ी रोकने वालो में वे भी शामिल थे। उन्हें गिरफ़तार कर लिया गया था। बाद में उन्हें फांसी की सजा सुनाई गई परन्तु उनके लिए जीना मरना पुराने कपड़े बदलने से अधिक कुछ भी नहीं था। वे कहते कि मौत आ रही है, हंसते-हंसते बड़े चाव और खुशी से उसे जोर से गले लगा लूंगा। विचारों में वे अपने साथियों के साथ एक थे।



तो ऐसे थे काकोरी के क्रांतिकारी शहीद जिनके बारे में जज को भी कहना पड़ा था कि ''ये नौजवान सच्चे देश भक्त हैं।'' क्या हम इनकी याद अपने दिल से मिटने दे सकते हैं। इनसे प्रेरणा लेने से अपने को रोक सकते हैं।

मनोविज्ञान और वैज्ञानिक मानसिकता का विकास

प्रो. सुरेन्द्र कुमार

प्रकृति और समाज को समझने की जिज्ञासा मानव की प्रकृति है। इसी जिज्ञासा के फलस्वरूप सबसे पहले सांकेतिक भाषा का विकास हुआ। भाषा का विकास सभ्यता और संस्कृति का आधार रहा है। भाषा का आरम्भिक स्वरूप सांकेतिक या चित्रलिपि रहा है। इस सामग्री से प्रकृति और समाज को समझने के लिए जिन प्रारूपों का विकास हुआ उनको 'मिथक' कह सकते हैं। ये प्रारूप सत्य या असत्य हो सकते हैं। 'मिथक' प्रतीक या बिम्ब हैं जो मानव के ज्ञान के न्यूनतम स्तर पर प्रस्तुत किए गए। ये अधिकांश मौखिक थे। यह पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहा है, इसलिए इन्हें 'किवदंतियां' भी कहा जाता है। प्राचीन काल से प्रचलित होने के कारण इन्हें 'पौराणिक' भी कहा जाने लगा। मिथकों ने आम तौर पर अपने समय के अधिकांश रीति-रिवाजों, परंपराओं और आचार-नियमों को स्वरूप प्रदान किया है। भाषा और ज्ञान के विकास की प्रक्रिया लम्बे समय तक जारी रही और अभी भी इस का विकास हो रहा है।

मिथकों, किवदंतियों और पौराणिक कथाओं पर आधारित परिवार के रीति-रिवाज़ों, परंपराओं को बच्चा आत्मसात् करता है। परिवार की धारणाओं से बच्चे के संस्कार बनते हैं। बच्चा इन संस्कारों को सहज स्वीकार कर लेता है और ये उसके अवचेतन मन में गहरे छप जाते हैं। ये संस्कार उसकी भावनाओं से जुड़ जाते हैं और उसकी आदतें बन जाते हैं। जब भी उस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न होती है तो बच्चा उन संस्कारों के अनुरूप व्यवहार करता है।

समय के साथ जब बच्चे का मानसिक विकास होता है तो उसमें विवेक (तार्किक सोच) का तेजी से विकास होता है। वह अपने आप से क्या, क्यों, और कैसे, जैसे प्रश्न करता है और उन प्रश्नों का उत्तर ढूंढने का यत्न करता है। यदि उन प्रश्नों के उत्तर, मिथकों पर आधारित समझ (जिसे उसने अपने परिवार और रीति-रिवाजों से ग्रहण किया है) नए तथ्यों के अनुरूप नहीं होते तो यह विवेक और भावनात्मक स्तर पर नए उत्तरों को स्वीकार कर लेता है। धीरे-धीरे नए उत्तर पहले के संस्कारों का स्थान ले लेते हैं और अवचेतन मन में छप जाते हैं। इस प्रकार एक बच्चे की मोच और समझ का विकाम होता है।

यदि हम एक व्यक्ति की सोच को तार्किक और वैज्ञानिक बनाना चाहते हैं तो हमें उस मानसिक प्रक्रिया को समझना होगा जिससे हमारे संस्कार/आदतें बनते हैं और आदतों को बदलने की प्रक्रिया को भी समझना होगा।

सोचने-समझने का कार्य हमारे मस्तिष्क में स्थित दिमाग का काम है। मस्तिष्क क्या है? मस्तिष्क मनुष्य के शरीर का एक बहुत जटिल अंग है जो विचार, स्मृति, भावना, स्पर्श, मोटर कौशल, दृष्टि, श्वास, तापमान, भूख और हमारे शरीर को संचालित करने वाली हर प्रक्रिया को नियंत्रित करता है। मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी से गुजरता केंद्रीय तंत्रिका तंत्र या सेंट्रल नर्वस सिस्टम (सीएनएस) एक व्यक्ति के शरीर से गुजरते संकेतों के प्रवाह को नियंत्रित करता है। Mind (मन, दिमाग) मस्तिष्क की उस क्षमता को कहते हैं जो मनुष्य को चिंतन और स्मरण करने, निर्णय लेने, भाव प्रकट करने, इंद्रिय ग्राह्यता, एकाग्रता, व्यवहार, परिज्ञान (अंतर्दृष्टि) इत्यादि में सक्षम बनाती है। दिमाग की कार्य-प्रणाली को मनोवैज्ञानिक अभी तक भी पूरी तरह समझ नहीं पाए हैं।

> मस्तिष्क मनुष्य के शरीर का एक बहुत जटिल अंग है, जो विचार, स्मृति, भावना, स्पर्श, मोटर कौशल, दृष्टि, श्वास, तापमान, भूख और हमारे शरीर को संचालित करने वाली हर प्रक्रिया को नियंत्रित करता है। मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी से गुज़रना केंद्रीय तंत्रिका तंत्र या सेंट्रल नर्वस सिस्टम (सीएनएस) एक व्यक्ति के शरीर से गुजरते संकेतों के प्रवाह को नियंत्रित करता है।

दिमाग की कार्यप्रणाली को समझने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अनेक मॉडल बनाए हैं। एक मॉडल के अनुसार दिमाग को तीन हिस्सों में बांटा गया है।

1. चेतन मन (conscious mind), 2. अवचेतन मन (sub- conscious mind) और 3. अचेतन मन (un-conscious mind)। अचेतन मन मुख्य रूप से हमारे शरीर के सारे अंगों की कार्य-प्रणाली को स्वयं नियंत्रित करता है और अचेतन मन हमारे चेतन मन से लगभग स्वतंत्र है।

जो कुछ भी हम अपनी पांचों ज्ञानेंद्रियों से ग्रहण करते हैं, सबसे पहले उन तथ्यों की हमारे चेतन मन में अनुभूति होती है। ये अनुभूतियां, एक फ़ैक्ट्री में उत्पादन प्रक्रिया में कच्चे माल की तरह, हमारे चेतन मन (दिमाग) में दाखिल होती हैं। चेतन

मन जागरूकता, निर्णय लेने और सक्रिय विचारों का केंद्र है। इसमें प्रक्तिप्रदत्त विवेक तर्कशक्ति (ठीक और गलत में भेद करने की शक्ति) है। हमारा चेतन मन प्राकृतिक रूप में हमारी तर्कशक्ति का केंद्र है। चेतन मन हमारी अनुभूतियों का परीक्षण करता है कि कौन-सी अनुभूति वैध (valid) है और कौन सी अवैध है। विवेक के आधार पर चेतन मन अवधारणाएं बनाता है जो उन तथ्यों की व्याख्या करती हैं। ये अवधारणाएं आस्था/विश्वास या प्रमाणों पर आधारित तर्कों पर आधारित होती हैं। चेतन मन अपने विवेक के आधार पर जिन बातों/तथ्यों और अवधारणाओं को ठीक मानकर स्वीकार कर लेता है, उन तथ्यों और उन तथ्यों पर आधारित अवधारणाओं को अवचेतन मन में संग्रहित (स्टोर) होने के लिए भेज देता है।

हमारा अवचेतन मन, चेतन मन द्वारा स्वीकृत तथ्यों और अवधारणाओं का संग्राहलय है। हमारा अवचेतन मन ठीक या गलत और अच्छे या बुरे में भेद नहीं करता। जो विचार चेतन मन स्वीकार कर लेता है, उन्हें वह संग्रहित कर लेता है और एक जैसे तथ्यों और अवधारणाओं को परस्पर जोड़कर उनका विकास भी करता है। वास्तव में अवचेतन मन अर्जित आदतों, संग्रहित ज्ञान और सुलभ यादों का केंद्र है।

> मनुष्य अपने चेतन मन के प्राकृतिक विवेक का विकास कर सकता है अर्थात् मनुष्य तर्कशक्ति का विकास कर सकता है। वह तर्कों के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण करके आलोचनात्मक तर्कशक्ति का विकास कर सकता है। मनुष्य अपनी आलोचनात्मक तर्कशक्ति का ओर विकास करके उसे वैज्ञानिक सोच में बदल सकता है। हर मनुष्य के सामने चुनौती यह है कि वह वैज्ञानिक सोच का विकास कैसे करे। हर व्यक्ति की सोच में कुछ अवधारणाएं प्रमाण-आधारित तर्कों पर आधारित होती हैं और कुछ अवधारणाएं आस्था (बिना प्रमाण के विश्वास) पर आधारित होती हैं।

अवचेतन मन हमारी भावनाओं (emotions) का भी केंद्र है। भावना या संवेग वस्तुतः ऐसी प्रक्रिया है जिसे व्यक्ति उद्दीपक (emotions) द्वारा अनुभव करता है। लम्बे समय तक स्थिर भावनाएं हमारा मूड बनाती हैं। अवचेतन मन सोचता नहीं है, यानी अवचेतन मन ठीक और गलत में भेद नहीं करता। अवचेतन मन यह नहीं समझता कि कौन सी अवधारणा प्रमाण पर आधारित है और कौन सी अवधारणा आस्था/विश्वास/अंधविश्वास पर आधारित है। (आस्था का अर्थ है कि बिना प्रमाण के विश्वास करना या किसी बात को सच मान लेना।) अवचेतन मन अवधारणाओं को परस्पर जोड़ता है और उनका विकास भी करता है। इस कार्य में हमारी भावनाएं (emotions) अहम भूमिका निभाती हैं। जब भी समरूप (similar) प्रकार के तथ्य एक व्यक्ति के सामने आते हैं, अवचेतन मन उन तथ्यों पर आधारित अवधारणाओं के अनुसार चेतन मन को कार्य करने का दिशा-निर्देशन देता है। बार-बार उसी तरह व्यवहार करने से ये अवधारणाएं हमारे अवचेतन मन में पक्की आदतें बन जाती हैं, यानी हमारी भावनाओं से पक्की तरह से जुड़ जाती हैं। अवचेतन मन रचनात्मक/सृजनात्मक है और चेतन मन द्वारा स्वीकृत विचारों के आधार पर नए विचारों/धारणाओं को जन्म देता है, यानी हमारा अवचेतन मन उपजाऊ धरती के समान है, जैसा बीज बोया जाएगा वैसा ही पौधा उगेगा।

यदि कोई भी परिस्थिति चेतन मन के सामने उत्पन्नन होती है तो चेतन मन अवचेतन मन को संकेत भेजता है, अवचेतन मन पहले स्वीकृत विचार या धारणा के अनुसार व्यवहार करने का आदेश देता है। जब इस स्वीकृत विचार को बार-बार दोहराते हैं तो समय के साथ यह व्यक्ति की आदत बन जाता है। यह व्यावहार स्वचालित हो जाता है। इस पर सोचने की जरूरत नहीं होती। यह पक्की आदत या स्वभाव बन जाता है। ऊपर के विश्लेषण से स्पष्ट है कि हमारी कुछ आदतें प्रमाण पर आधारित अवधारणाओं पर आधारित होती हैं और कुछ आदतें आस्था, अप्रमाणित मिथकों या अंधविश्वासों पर आधारित होती हैं।

यदि हमारा चेतन मन, किसी नए विचार (जो पहले के विचार से असंगत या विपरीत है) को अवचेतन मन में भेज देता है तो अवचेतन मन उस पर प्रतिक्रिया करता है कि नया विचार पहले विचार से असंगत है और दोनों में से किस विचार को स्वीकार किया जाए। दो विपरीत विचार, हमारे अवचेतन मन में साथ-साथ नहीं रह सकते, इससे ठीक और गलत में भ्रम पैदा हो जाएगा। लेकिन ठीक और गलत का अंतर तो केवल चेतन मन ही करेगा। दो विपरीत विचारों में से कौन सा विचार ठीक है, इसका निर्णय चेतन मन करता है और अवचेतन मन को निर्देश देता है कि कौन से विचार को स्वीकार किया जाए और अवचेतन मन में स्टोर किया जाए। इस प्रकार अवचेतन मन प्रतिक्रियात्मक भी है।

मनुष्य अपने चेतन मन के प्राकृतिक विवेक का विकास कर सकता है अर्थात मनुष्य तर्कशक्ति का विकास कर सकता है। यह तर्कों के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण करके आलोचनात्मक

तर्कशक्ति का विकास कर सकता है। मनुष्य अपनी आलोचनात्मक तर्कशक्ति का ओर विकास करके उसे वैज्ञानिक सोच में बदल सकता है। हर मनुष्य के सामने चुनौती यह है कि यह वैज्ञानिक सोच का विकास कैसे करे। हर व्यक्ति की सोच में कुछ अवधारणाएं प्रमाण–आधारित तर्कों पर आधारित होती हैं और कुछ अवधारणाएं आस्था (बिना प्रमाण के विश्वास) पर आधारित होती हैं। चुनौती यह है कि आस्था–आधारित अवधारणाओं को बदलकर प्रमाण– आधारित अवधारणाओं में कैसे बदला जाए। जो व्यक्ति अपनी आस्था–आधारित अवधारणाओं पर प्रश्न चिह्न लगाता है और अपनी सभी अवधारणाओं को प्रमाण–आधारित बनाने के लिए यत्नशील रहता है, हम कहते हैं कि उस व्यक्ति में वैज्ञानिक मानसिकता का विकास हो गया है।

आस्था या अंधविश्वास पर आधारित आदतों को वैज्ञानिक सोच पर आधारित नई आदतों से कैसे प्रतिस्थापित किया जाए? यद्यपि यह एक बहुत चुनौतीपूर्ण कार्य है परंतु असम्भव कार्य नहीं है। लेकिन एक–दो लेक्चर सुनने से या कोई एक पुस्तक पढ़ने से स्वत: पुरानी सोच नहीं बदलती। नई समझ को व्यवहार में उतारना और उसे अपनाना इस दिशा में पहला कदम है। वास्तव में यह प्रक्रिया लगभग ऐसी है. जैसे एक प्रकार की आदत को बदलकर उस के स्थान पर नई आदत का विकास करना।

वैज्ञानिक मानसिकता का विकास कैसे करें ?

वैज्ञानिक मानसिकता विकसित करने के लिए हमें विज्ञान की इस मूलभूत प्रतिस्थापना/मान्यता को आत्मसात करना होगा कि ‘प्रकृति कुछ नियमों के अनुसार चलती है। इन नियमों को विज्ञान की सहायता से जाना और समझा जा सकता है। प्रकृति के नियम ऐसे नियम नहीं हैं जिन्हें बदला जा सके। सामाजिक नियम प्रकृति ने नहीं बनाए, मनुष्य और समाज ने बनाए हैं। सामाजिक नियम, मानव स्वभाव और सामाजिक व्यवस्था पर आधारित हैं। सामाजिक नियम समय और स्थान से प्रभावित होते हैं।’ विज्ञान इन प्राकृतिक और सामाजिक नियमों को ढूंढने के लिए यत्नशील रहता है। यूरोप के पिछले तीन–चार सौ सालों के इतिहास पर नजर दौड़ाएं तो हम पाते हैं कि विज्ञान के विकास से दुनिया में कितना विकास हुआ। भाप इंजन और बिजली की खोज से यूरोप में औद्योगिक क्रांति हुई। समुद्री और हवाई जहाजों का निर्माण हुआ जिससे यातायात बहुत सुगम हो गया। तार बेतार की खोज से संचार व्यवस्था में क्रांति हुई। टेलिफोन, रेडियो (Radio), टी.वी. और कम्प्यूटर टेक्नोलॉजी, परमाणु शक्ति और चिकित्सा विज्ञान इत्यादि में अभूतपूर्व विकास हुआ है। वैज्ञानिक खोजों के आधार पर मनुष्य चांद पर पहुंच गया। अब तो आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और बायोटेक्नोलॉजी के विकास की अभूतपूर्ण सम्भावनाएं हैं। विज्ञान के विकास से जीवन का कोई पक्ष अछूता नहीं रहा। फिर भी सामाजिक क्षेत्र में आस्था और अंधविश्वास की कमी नहीं है। लोगों ने विज्ञान पर आधारित सोच और आस्था (विशेषकर धार्मिक आस्था) के लिए अपने दिमाग में अलग–अलग खाने बना लिए हैं।

अब प्रश्न उठता है कि अपने पुराने संस्कारों/आदतों को बदलकर वैज्ञानिक सोच का विकास कैसे किया जाए। आस्था या अंधविश्वास पर आधारित आदतों को वैज्ञानिक सोच पर आधारित नई आदतों से कैसे प्रतिस्थापित किया जाए? यद्यपि यह एक बहुत चुनौतीपूर्ण कार्य है परंतु असम्भव कार्य नहीं है। लेकिन एक–दो लेक्चरर सुनने से या कोई एक पुस्तक पढ़ने से स्वत: पुरानी सोच नहीं बदलती। नई समझ को व्यवहार में उतारना और उसे अपनाना इस दिशा में पहला कदम है। वास्तव में यह प्रक्रिया लगभग ऐसी है, जैसे एक प्रकार की आदत को बदलकर उस के स्थान पर नई आदत का विकास करना।

यदि आपकी पुरानी आदतें आस्था या अंधविश्वास पर आधारित हैं तो सबसे पहले आप अपने आप से ‘क्या, क्यों और कैसे’ जैसे प्रश्न करें और वैज्ञानिक समझ पर आधारित तर्कों को आत्मसात् करें और अपनाएं। बार–बार उन तर्कों को दोहराएं और उनके अनुसार व्यवहार करना शुरू करें ताकि वे आपकी नई आदतें बन जाएं। इस तरह धीरे–धीरे नई आदत आपके अवचेतन मन में पुरानी आदत का स्थान ले लेगी। पुरानी आदत को न दोहराने से उसका वेग क्षीण होता जाएगा और वह धीरे–धीरे मर जाएगी, यानी नई आदत पुरानी आदत को पूर्ण रूप से विस्थापित कर देगी। अगर आप अपनी आस्था पर आधारित आदतों को वैज्ञानिक समझ पर आधारित आदतों से विस्थापित कर देंगे तो आपमें वैज्ञानिक मानसिकता का उदय हो जाएगा और धीरे–धीरे आपकी सोच पूर्ण रूप से वैज्ञानिक सोच बन जाएगी। वैज्ञानिक नियम स्थिर नहीं हैं, गतिशील हैं, इसलिए आपको वैज्ञानिक सोच का विकास लगातार करते रहना होगा।

(लेखक महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक के अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष और शैक्षणिक मामलों के डीन रहे हैं।) (स्त्रोत : पत्रिका ''ज्ञान–विज्ञान बुलेटिन'')

तर्क से काटिए अंधविश्वासों का जाल

संपादक : राकेश नाथ

अंधविश्वास का जाल इतना उलझा होता है कि चाह कर भी आदमी उससे मुक्त नहीं हो सकता। यदि हमें आगे बढ़ना है तो अंधविश्वास के इस जाल को काटना होगा।

क्या कोई बिल्लियों से भी डरता है? अजीब सवाल है न ? पर आप यकीन करें या न करें, ऐसा होता है।

अगर कोई बुरी तरह अंधविश्वासों के जाल में उलझ जाए तो वह मन से इतना कमजोर हो जाता है कि भय और तनाव के उस बोदे वातावरण में किसी बिल्ली का रास्ता काट जाना भी उसे आफत लगता है।

बिल्ली का रास्ता काटना

बचपन की एक घटना याद आ रही है। हाई स्कूल के इम्तिहान चल रहे थे। मैं गणित का परचा देने के लिए घर से निकला ही था कि अचानक एक काली बिल्ली कहीं से आई और रास्ता काट कर चली गई। डर के मारे मेरा मुंह सफेद पड़ गया। बिल्ली का रास्ता काटना अच्छा नहीं होता यह कई बार घर के बड़े लोगों से सुना था। पर उस समय तो मैं इम्तिहान देने जा रहा था, वह भी गणित का। परचा बिगड़ा तो साल भर की मेहनत बेकार जा सकती थी।

अब क्या होगा? तरह तरह की आशंकाएं घेरने लगीं। मैं बुरी तरह घबरा गया। ऐसी कोई खास गरमी न थी, पर पसीने से मेरी कमीज तरबतर हो चुकी थी।

फिर अचानक मैंने तर्कशक्ति से अपने सुन्न पड़े मस्तिष्क को चेताया। आखिर पेपर खराब कैसे हो सकता है? मैंने पूरे पाठ्यक्रम की तैयारी की थी। तो फिर जो कुछ मैंने पढ़ा है, क्या मैं इम्तिहान में भूल जाऊंगा? मैं ने खुद को टटोला तो लगा कि इस की संभावना नहीं है।

इस से मन कुछ मजबूत हुआ। मुझे तसल्ली मिली।

फिर जैसे ही परचा हाथ में आया। मैंने तेजी से पढ़ना शुरू किया। पूरा पढ़ने के बाद मुझे वैसा ही लगा, जैसे बादलों के छंटने के बाद आसमान साफ हो जाता है। ज्यादातार सवाल ऐसे थे, जिन्हें मैंने बीसियों दफा लिख कर तैयार किया था। मैंने सोच समझ कर सवाल हल किए। बाद में अच्छी तरह जांच लिया।

फिर भी परीक्षाकक्ष से बाहर आने पर मन में थोड़ी-बहुत शंका थी। मैंने सवालों के जवाब मिलाए। सभी जवाब सही थे। यानी मैंने पूरा परचा ठीक हल कर लिया था।

और इस से बिल्ली के रास्ता काटने को ले कर जो भय और अंधविश्वास मेरे अवोध मन में उपजा था, वह एकाएक खत्म हो गया। मैं खुश था-बेहद खुश, जैसे मछली की गरदन में फंसा जाल कट गया हो और वह खुली हवा में आजादी से सांस ले पा रही हो।

अब समझ में आया कि एकाध दफा बिल्ली के रास्ता काटने से काम बिगड़ा तो भाग्य या किसी अदृश्य सत्ता के हस्तक्षेप के कारण नहीं, बल्कि सिर्फ इसी घबराहट की वजह से।

खैर जो भी हो, मेरी चेतना पर से बिल्लियों का बेवजह का आतंक मिट गया और यह एक बोदा अंधविश्वास भी।

भय का काला साया

अंधविश्वास मकड़ी के जाले की तरह है। एक बार इस में गरदन फंस जाने पर यह लगातार कसता जाता है और हम आसानी से छूट नहीं पाते, बस झींकते, छटपटाते रह जाते हैं।

अंधविश्वास का यह जाल भय और आतंक के ताने-बाने से बुना जाता है। इसलिए यह हमारे आत्मविश्वास और संकल्पशक्ति को चर जाता है। तब हम स्वतंत्र रूप से सोच तक नहीं पाते और गुलामी में जीने के आदी हो जाते हैं।

यह कहने की जरूरत नहीं कि अंधविश्वासी व्यक्ति सहज जीवन नहीं जी सकता। वह रास्ते की हर रुकावट से घबरा जाता है तथा राह पर खुद अपने द्वारा बिछाए गए कांटों से अपने पैरों को लहूलुहान कर डालता है। जाहिली के ये भद्दे झाड़झंखाड़ और जहरीली नागफनियां हटाए बगैर प्रगति की राह प्रशस्त नहीं हो सकती। अंधविश्वास से घिरा न कोई व्यक्ति तरक्की कर सकता है, न देश, न समाज।

अंधविश्वास चाहे अनचाहे हमें कैसे ग्रस लेते हैं? हम इन की लपेट में आ कर आसानी से छूट क्यों नहीं पाते?

मनोवैज्ञानिकों ने काफी विस्तार से इन सवालों का जवाब दिया है। होता यह है कि पहले अवचेतन मन (जो ज्यादा तर्क के प्रभाव में नहीं होता) इन की गिरफ्त में आता है। उस समय तर्क के द्वारा मुकाबला न किए जाने पर, फिर धीरे-धीरे चेतन मन भी उनके आगे हार मान लेता है और समूचा व्यक्तित्व उन

से आक्रांत हो जाता है।

वातावरण का असर

इस बारे में दो राय नहीं हैं कि अंधविश्वास की शुरुआत ज्यादातर माहौल से होती है। इसलिए जिस समाज या वातावरण में अंधविश्वास अधिक होते हैं, उस समाज में व्यक्ति जल्दी और ज्यादा से ज्यादा अंधविश्वास की गिरफ्त में आता जाएगा। भारतीय समाज सब से ज्यादा अंधविश्वासी है, इसलिए हमारे यहां पढ़े-लिखे लोग भी इस के असर से अछूते नहीं हैं।

ये संस्कार शुरू में ज्यादा प्रभावी नहीं होते। हां, सुनीसुनाई चालों और आसपास के वातावरण का मन पर अज्ञात रूप से असर पड़ता जाता है। किंतु समय के साथ यही विष बीज पनपते हैं तो अपने दकियानूसी संस्कारों के आगे हम खुद दयनीय और कातर हो जाते हैं। तब हम जरा-जरा सी बातों पर या बगैर बात करने लगते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं कि भूतप्रेत का किसी ने नाम लिया नहीं कि उनके प्राण कंठ में अटक जाते हैं।

मेरे एक मित्र को बचपन में उस के दादाजी ने भूतप्रेत की कहानियां सुनाईं। नतीजा यह हुआ कि वह हमेशा डरा-डरा रहने लगा। कमरे में कभी अकेला सोना पड़ता तो उसे अंधेरे में हिलती हुई खोपड़ियां दिखाई पड़ती थीं और उसे लगता था कि कोई अदृश्य पंजा उस की ओर लपकता आ रहा है। वह अचानक बुरी तरह चीख पड़ता था।

यहां तक कि अब भी वह इस आतंक से पूरी तरह उबर नहीं पाया। रात में अब भी किसी काम से अकेले जाना पड़े तो पेड़ों के पत्तों की हलकी सरसराहट से यह थरथर कांपने लगता है, पसीने-पसीने हो उठता है।

दरअसल, बचपन से ही हमारे मन में ईश्वर, देवीदेवता, भूतप्रेत इत्यादि का जो डर बैठा दिया जाता है, यह धीरे धीरे अपना असर दिखाता है। तब भूतप्रेत जैसी चीजें भी, जिन का कोई अस्तित्व नहीं है, साकार लगने लगती हैं। इन को ले कर गढ़े गए हास्यास्पद और बचकाने किस्सों को मिथ्या कहने का आत्मविश्वास तक हम में नहीं रहता। हम अकारण और हर वक्त डरे-डरे रहते हैं।

एक बार आत्मविश्वास हिल जाने पर मन न चाहते हुए भी खुद को किसी अन्य सत्ता का आदेश मानने के लिए विवश सा पाता है।

कुछ अंधविश्वास तो सभी जगह एक ही रूप में इतने अधिक प्रचलित हैं कि उन्हें एक किस्म की सामाजिक मान्यता मिल गई है, हालांकि उन के पीछे रत्ती भर वजन या तर्क नहीं होता। उनका कारण पूछने पर जवाब हमेशा यही मिलता है, ''जी, हमें पता नहीं... मगर हमारे बुजुर्गों ने फरमाया है, वे कोई गलत थोड़े ही कह गए हैं!

ऐसे आत्महीनता भरे दमघोंटू वातावरण में अलग-अलग पड़ा व्यक्ति खुद भी मकड़ी की तरह जाने अनजाने अंधविश्वास के जाले बुनता है। फिर उन में फंस कर अपनी नाकामयाबी और 'भाग्यहीनता' का रोना रोता है।

मेरे एक मित्र अगर किसी काम से बाहर निकलते हैं और 10-12 मिनट तक बस न मिले तो एकदम परेशान हो उठते हैं। उन के दिल में यह बात बैठ जाती है कि जिस काम से वह निकले हैं वह अब नहीं होगा। ऐसे ही रास्ते में किसी खास पेड़ या किसी खास पक्षी के मिलने पर उत्साहित हो जाते हैं, अन्यथा वह बुरी तरह खिन्न हो जाते हैं।

ऐसे व्यक्ति क्या संतुलित जीवन जी सकते हैं?

धर्मतंत्र से होता है पोषण

यह एक कड़वी वितृष्णा भरी सचाई है कि इन अंधविश्वासों को सब से ज्यादा खादपानी धर्म तंत्र ने दिया है। (और रोशनी की तो इन्हें जरूरत ही नहीं है, क्योंकि धर्म की तरह ये भी अंधेरे और सीलन में पनपते हैं)। बहरहाल, समाज की रगों में घी में जहर की तरह संचित होते ये अंधविश्वास विस्फोट की शक्ल में फूटते हैं तो चौंका देने वाली घटनाएं और हादसे सामने आते हैं जो मानवीय सभ्यता और संस्कृति पर गहरे सवालिया निशान छोड़ जाते हैं।

पिछले दिनों उज्जैन के एक धार्मिक स्थान में एक बच्चे ने आत्मदाह कर लिया। उसकी मौत के बाद उस के हाथ की लिखी एक परची मिली। उस में उस ने इस आत्मदाह की वजह तथा अपने मनोभाव व्यक्त किए थे, ''सुना है कि बलिदान से देवता खुश होते हैं, इसलिए मैं आत्माहुति दे रहा हूँ। लोग खुश हों, सब के दुखदर्द दूर हो जाएं, यही मेरी इच्छा है...।''

देखा आप ने, अंधविश्वास ने एक भावुक बच्चे को, जिस में कुछ करने की प्रेरणा थी, किस बुरी तरह भटकाया और अंततः उस की जान ले ली।

इस से मिलती-जुलती घटना कुछ महीने पहले लखीमपुर खीरी में घटी जहां एक नौजवान ने बलि दे दी। युवक अपने क्षेत्र के लोगों की तकलीफों से दुखी था। उसका खयाल था कि उस के बलिदान से उस क्षेत्र में खुशहाली आ जाएगी।

इसी तरह पिछले दिनों जम्मू से 60 किलोमीटर दूर गेरुए

वस्त्र पहने एक व्यक्ति बेहोश पाया गया। उस के साथ लेटा हुआ बच्चा मृत था। पता चला कि उस व्यक्ति का नाम जगदीशचंद्र है तथा वह अलीगढ़ का रहने वाला है। 1,400 किलोमीटर की यात्रा पैदल तय कर के वह एक मंदिर के सामने अपनी तथा अपने बेटे की बलि देने जा रहा था।

इस से पता चलता है कि धार्मिक संस्कार के रूप में हमारे जीवन में कितना खतरनाक जहर उतारा जा रहा है। बचपन में सुनाई गईं अविश्वसनीय और पलायनवादी पौराणिक कथाएं बच्चों के नन्हे मस्तिष्क को बुरी तरह प्रभावित करती हैं। वे कितने ही अबोध जीवन बरबाद कर देती हैं। विपरीत स्थितियों का सामना करने का साहस छीन लेती हैं और भयभीत, मृत ठठरी बना कर छोड़ देती हैं। वर्षा या किसी भी धार्मिक अनुष्ठान के लिए अकारण निरीह पशुओं की बलि देना किसी जघन्य अपराध से कम नहीं है. लेकिन मूर्खता और बर्बरता की हद तो यह है कि कभी–कभी इन तथाकथित धार्मिक अनुष्ठानों में मनुष्यों की भी, विशेष तौर पर बच्चों की बलि दी जाती है।

यह कैसा धर्म है?

मध्य प्रदेश के आदिवासी क्षेत्र की घटना है। एक स्त्री अपने सात–आठ साल के बच्चे को साथ ले कर लकड़ी काटने गई। बच्चे को पास ही बैठा कर वह अपने काम में व्यस्त हो गई। बच्चा इधर उधर घूमने लगा। काम के बाद उस स्त्री ने देखा कि बच्चा वहां नहीं है। उस ने आसपास बहुत ढूंढा। आखिर निराश और टूटा मन ले कर वापस आ गई। कुछ दिनों बाद उस बालक का सिर कटा शव मिला और फिर पता चला कि किसी ने धार्मिक अनुष्ठान के लिए अबोध बालक का सिर काट कर बलि दी थी।

आज भी इनसानियत की चादर पर ये खून के छींटे बिखरते हैं तो यह हमारे समाज के जीवन रहित होने की ही निशानी है।

इस तरह तंत्र–मंत्र और सिद्धियों के नाम पर कितनी ही क्रूरता और मारण, टोटका जैसी हिंसामूलक और अमानुषिक चीजें अपने यहां प्रचलित हैं। अपने बच्चे के लिए दूसरे के बच्चे की बलि ले लेना तो एक मामूली सी बात है। अपने कार्य की सफलता के लिए किसी दूसरे की बलि ले लेने वाला धर्म कैसा धर्म है?

हैरानी तो इस बात की है कि लोग यह तक नहीं सोचते कि जिस काम की नींव ही किसी निर्दोष व्यक्ति के रक्त पर रखी गई है, वह खुद में कितना अमानुषिक होगा पर अंधविश्वास में गले तक डूबे समाज में यह सब सोचने की फुरसत ही किसे है? और यह सब सोचें तो अंधविश्वास रहे ही क्यों?

कभी–कभी ये अंधविश्वास इतने अजीब और हास्यास्पद होते हैं कि इन्हें मानने वालों पर दया आती है, साथ ही अपने समाज पर, खुद पर भी शर्म आती है। उदाहरण के लिए आप ने अखबारों में किसी–किसी क्षेत्र में वर्षा न होने पर गांव की स्त्रियों द्वारा रात्रि में निर्वसन हो कर सामूहिक रूप से हल चलाने की घटनाएं पढ़ी होंगी। ये लोग किसी सदी की मानसिकता में जी रहे हैं?

अफसोस की बात यह है कि पढ़े–लिखे समाज में ऐसी घटनाओं के बारे में पद का कोई क्षोभ नहीं पैदा होता। ये ज्यादा से ज्यादा इसे कुतूहल के रूप में लेते हैं। हमारे समाज में ही कुछ लोग इतनी जहालत और गलीज माहौल में रह रहे हैं तो यह पूरे समाज के लिए शर्म की बात है। यह बात मन में क्यों नहीं उठती? शायद इसलिए परोक्ष रूप से धर्म की बातें सुन–सुन कर ये भी उस के पक्षधर हो जाते हैं।

राजस्थान के बूंदी कसबे में हर घर के बाहर मेहंदी रचे हाथ अंकित थे। किसी भयानक अनिष्ट की आशंका से डरे हुए लोगों ने खुद अपने दरवाजे पर इन का उकेरण किया था। कारण यह था कि किसी महिला ने बताया कि रात उसे सपने में लाल कपड़े पहने एक बूढ़ी स्त्री दिखाई पड़ी थी, जिस ने सब को बरबाद करने की धमकी दी थी, ''अगर बचना चाहते हो तो अपने घरों के बाहर मेहंदी रचे हाथ अंकित कर दो, वरना मैं किसी को नहीं छोडूंगी।'' और देखते ही देखते वहां हर घर के बाहर मेहंदी की छाप नजर आने लगे।

ऐसी घटनाओं के बारे में पढ़ कर विदेशी लोग हमारे देश के बारे में कैसी धारणा बनाएंगे? ऐसे में अगर वे भारत को पिछड़ा हुआ या जादूटोने वाला देश कहते हैं तो हमें गुस्सा क्यों आता है? आखिर यह एक हकीकत है और वाकई अगर हमें अपने देश के बारे में यह सब सुनना अच्छा नहीं लगता तो हम इन्हें दूर करने की कोशिश क्यों नहीं करते?

पूरा समाज जर्जर है

कुछ लोग इस तरह अंधविश्वासों की जिम्मेदारी सिर्फ अनपढ़ लोगों पर डाल देते हैं. पर असलियत यह है कि हमारा पूरा समाज इस रोग से जर्जर और बीमार हो चुका है यहां तक कि अब पढ़े–लिखे शहरवासी तो ओर भी ज्यादा अंधविश्वासी होते जा रहे हैं। यहां तक कि अगर कोई व्यक्ति मन से इन अंधविश्वासों को न मानता हो तो भी सामाजिक भय से बजाय विरोध करने के वह चुप रहना ही पसंद करता है। वैसे, ये

अंधविश्वास अनपढ़ लोगों में हैं तो इन्हें दूर करने का कुछ तो जिम्मा आखिर पढ़े-लिखे समाज का भी है।

और फिर पढ़े-लिखे लोग भी किस से कम हैं? क्या वे शादीविवाह, मुंडन, जन्म, अंत्येष्टि, उत्सव, गृहप्रवेश, किसी दुकान या व्यवसाय की शुरुआत जैसे मौकों पर धार्मिक आचारों/अनुष्ठानों से बच सके हैं ? या इस ढोंग से अलग हट कर जीवन जीने की अपनी स्वतंत्र शैली बना सकने की ललक और छटपटाहट उन में है?

कभी-कभी तो दिखाई पड़ता है कि पढ़े-लिखे लोगों पर इन अंधविश्वासों का रंग कहीं गहरा है और वे ज्यादा धूमधाम और आडंबरपूर्ण रीति से इन का प्रदर्शन करते हैं। हां, यह जरूर है कि आधुनकिता के तथाकथित प्रतीक चिन्हों का भी वे मोह नहीं छोड़ पाते और खुद को आडंबरपूर्ण आधुनिकता और दकियानूसीपन की बेमेल खिचड़ी बना डालते हैं।

हमारे समाज में एक अजीब सा विरोधाभास है। हम खुद को आधुनिक और प्रगतिशील कहलाना बेहद पसंद करते हैं, जब कि व्यावहारिक जीवन में हम इन से कोसों दूर होते हैं. पढ़ेलिखे लोगों को इन अंधविश्वासों का विरोध करने के लिए कहा जाए तो वे इस बासी विषय से उकता कर आठ कोनों का मुंह बना कर दूर खड़े हो जाएंगे, जब कि असलियत यह होती है कि इन चीजों को लेकर वे अपने भीतर झांकने से बेहद घबराते हैं। कुछ लोग तो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में उलटे-सीधे तर्क ढूंढढांढ़ कर इन का समर्थन करने से भी बाज नहीं आते। फिर भी बिल्ला वे आधुनिकता और प्रगतिशीलता का ही लगाना पसंद करेंगे।

हम कितने आधुनिक हैं?

प्रगतिशीलता असल में है क्या? इस संबंध में प्रेमचंद का यह कथन महत्त्वपूर्ण है, ''सही तौर से प्रगतिशीलता वह है जो हमें अपनी प्रियतम रूढ़ियों को भी तर्क की कसौटी पर कसना सिखाए।'' इसी तरह 'आधुनिकता' बदले हुए वक्त और समाज के अनुसार अपना निरंतर आत्म संस्कार करना या स्वयं को नए विचारों और जीवंत वातावरण में ढालना है।

इस आधार पर हम कितने आधुनिक हैं? कितने प्रगतिशील हैं? और दुनिया जब कंप्यूटर और इंटरनेट के युग में पहुंच गई है तो हमारा विकास का चक्का किस बुरी तरह सदियों पुराने जाहिल संस्कारों के दलदल में फंसा है? 'ईश्वर' का विचित्र महाकार स्वरूप और उस की पूजा, अर्चना, कोई भी काम करने से पहले उस की स्तुति (चापलूसी) तथा न करने पर होने वाले अनिष्ट का डर अब भी हमारे संस्कारी मन के ठीक बीचोबीच बैठा है।

आज दीवाली पर देखें लोग कंप्यूटर की पूजा करते और उस पर टीका लगाते दिखाई दे सकते हैं। जब नई कार खरीदते हैं तो सब से पहले मंदिर के पुजारी से उस की पूजा करवाते हैं. क्या वास्तव में इस कार्य में कोई औचित्य है। केवल पंडेपुजारियों आदि की हलवा पूरी का ही प्रयोजन है।

इस का नतीजा यह है कि हम लोग मेहनत पर कम ध्यान देते हैं। भाग्य, बाधा तथा ग्रह उपद्रव की चिंताएं हमें ज्यादा तंग करती हैं और हम आंख मूंद कर झाड़फूंक, गंडेतावीज और जादूटोने की ओर लपकते हैं। कोई तीर्थों की यात्रा करता है तो कोई ध्यान साधना। कोई पानी में एक पांव पर खड़ा हो कर हठयोग साधता है। कुछ लोग तो सिद्धियां हासिल करने के लिए श्मशानों में जा कर तमाम घृणित और जुगुप्सापूर्ण क्रियाएं करते हैं।

लेकिन इस से हासिल कुछ नहीं होता। जितनी मेहनत इन सब में बरबाद की जाती है, उस का 10वां हिस्सा भी अगर सही जगह लगे तो देश कहां का कहां पहुंच जाए। पसीना बहाने से मिट्टी भी सोना हो जाती है।

यह पलायनवाद किशोर और युवा विद्यार्थियों के स्वस्थ, उम्मीद भरे, ताजा मस्तिष्क को भी काला कर रहा है।

ज्यादातर धार्मिक अंधविश्वासों आदि की जड़ में बगैर परिश्रम किए बहुत कुछ पा लेने की अंधइच्छा, कामचोरी की प्रवृत्ति ही है।

भाग्य के नाम पर

एक औसत भारतीय भाग्य से सब से ज्यादा आतंकित रहता है, क्योंकि हमारे यहां सारा जीवन ही 'भाग्य' का खेल समझा जाता है। भाग्य के नाम पर अजीव किस्म के धंधे भी चल निकले हैं, क्योंकि पिछले जन्म के कर्म (जिसे किसी ने नहीं देखा) और 'अगले जन्म' और 'स्वर्ग नरक' के नाम पर आदमी को धमकाया जा सकता है।

कुछ लोग हाथ की रेखाएं देख कर बड़ी सफाई से जेब काटते हैं। ये आप की मनः स्थिति भांप कर इतनी होशियारी से आप के गले में राहुकेतु का फंदा डालते हैं कि ज्यादा झंझट से बचने के लिए आप झट दस पांच रुपए भविष्यवक्ता के चरणों पर बढ़ा देते हैं, तभी आप इतमीनान से सांस ले पाते हैं।

इसी भाग्यवाद ने हमारे यहां आलसी, निकम्मे और जाहिलों की एक बड़ी फौज तैयार कर दी, मुफ्त की खा कर डकारने

वाले ढीठ साधुसंन्यासियों ने हमें चौपट करने में कोई कसर नहीं रखी। इन्होंने भारतीय समाज को दुर्बलता और दैन्य की सीमा रेखा से ऊपर उठने ही नहीं दिया।

इन साधुओं में घर तथा बीवी बच्चों को छोड़ कर भागे हुए असामान्य प्रकृति के गैरजिम्मेदार और हताश लोग तो हैं ही, साथ ही चोरी, डकैती, बलात्कार तथा न जाने किस-किस तरह के कुकृत्यों में लिप्त संगीन अपराधी भी कानून और व्यवस्था की आंखों में धूल झोंक कर गेरुए लिबास में छिपे मौज उड़ा रहे हैं।

जिस समाज की छाती पर निकम्मों, काहिलों और मुफ्तखोरों की इतनी बड़ी फौज हो, यह तरक्की कैसे करेगा?

हमारे यहां ही पड़े-पड़े दंड पेलने वाले मस्त मलंगों की इतनी बड़ी फौज क्यों है? इस का कारण है, हमारे यहां पुनर्जन्म तथा दानपुण्य आदि को ले कर जानबूझ कर फैलाया गया अंधविश्वास, जो चाहे अनचाहे लोगों को दयार्द्र कर देता है। वे जाहिलों, मुफ्तखोरों को भी भूख से व्याकुल नहीं देख सकते और खुद आधे पेट खा कर भी इन का पेट भरते हैं।

लोगों के दिलों में यही आर्द्रभावना जगाने के लिए कुछ चालाक लोग तरह तरह के पाखंड करते हैं, वे जानबूझ कर शरीर को विकृत कर लेते हैं। सारे शरीर पर पट्टियां बांध कर खुद को असहाय दिखाने का नाटक करते हैं। कुछ पेशेवर भिखारी तो बच्चों को चुरा कर उन के अंग विकृत कर के, उन्हें पैसा कमाने का जरिया बना लेते हैं। ऐसे जघन्य अपराध हमारे देश में खूब फलफूल रहे हैं।

इस के अलावा धर्म की आड़ में तरह-तरह के लोग तरह-तरह के मुखौटों में किस्म-किस्म के पाखंड करते हैं। धार्मिक मेलों में इन लोगों के विचित्र करतबों को देख कर आप दांतों तले उंगली दबा लेंगे। एक मेले में कुछ साधु संन्यासी पूरे-पूरे दिन शीर्षासन की मुद्रा में खड़े दिखाई दिए। इन की गरदन तक का भाग मिट्टी में अंदर धंसा हुआ था। ऐसे लोगों को सब से ज्यादा चढ़ावा चढ़ा और लोग उन की 'अलौकिक सिद्धि' से चमत्कृत भी हुए। पर दरअसल उन्होंने जमीन के अंदर एक छोटी सुरंग सी खोद ली थी। सांस लेने के लिए नाक से जुड़ी रबड़ की यो लंबी नलियां उन्होंने सुरंग के जरिए बाहर एक गड्ढे में निकाल ली थीं और वहां अपने लोगों को पहरे पर बैठा दिया था।

और यह 'अभूतपूर्व सिद्धि' थी किस के लिए? खाली लोगों की जेबों से धार्मिक दयार्द्रता के नाम पर सिक्के निकलवाने के लिए ही न? उसी के लिए दिन भर धूप में उलटे खड़े रहने का नाटक करना पड़ा, तो फिर सीधे-साधे मेहनत कर के ही कुछ क्यों न कमाया जाए, ताकि देश और समाज की तरक्की हो।

पर जिन्हें जनता की धार्मिक भावनाएं भुनाने या शोषण का चसका पड़ जाता है, वे किसी भी कीमत पर इसे छोड़ना नहीं चाहते।

अंधविश्वास के घेरों में

ऐसा नहीं कि हमारे समाज में धार्मिक विकृतियों और अंधविश्वासों की सड़ांध को महसूस ही नहीं किया गया या बदलाव की इच्छा और प्रयत्न दिखाई ही नहीं दिए, कम से कम दो क्रांतदर्शी व्यक्तित्व कबीर और बुद्ध ऐसे हुए हैं जिन का पूरा जीवन ही इन से संघर्ष में बीता। इन्होंने जहालत की संकीर्ण चौहद्दियों की काट कर समय की धारा को स्वतंत्र गति देने की जरूरत महसूस की थी।

विचित्र बात यह है कि ये दोनों ही युगचिंतक विचित्र त्रासदी के शिकार हुए, वे जीवन भर जिन अंधविश्वासों से लड़ते रहे, बाद में उन्हें उन्हीं अंधविश्वासों के घेरे में खड़ा कर के मृत पुतला बना दिया गया।

कबीर के अक्खड़ तर्क

कबीर की भाषा में ललकार और चुनौती भरी आक्रामकता ज्यादा है, उन की अक्खड़ता, मनमौजी व्यक्तित्व और जो बात ठीक लगे उसे डंके की चोट पर सही कहने की आदत उन्हें एक निराला व्यक्तित्व प्रदान करती है। उन के विचार का केंद्र मनुष्य रहा, इसलिए जप, छापा, तिलक, माला वगैरह उन सभी चीजों का उन्होंने विरोध किया जो मनुष्य को आडंबरों में उलझाती हैं और भीतर से बौना बनाती हैं।

''माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर,
कर का मन का छांडि कै, मन का मनका फेर।''

इसी तरह मूर्तिपूजकों के आडंबर की भी उन्होंने कड़ी निंदा की। जो पत्थर खुद निर्जीव हो, वह हमें क्या देगा? मूर्ति की पूजा करने से तो बेहतर है कि चक्की को पूजा जाए, जिस का पीसा अनाज सारा संसार खाता है।

''पाहन पूजै हरि मिलै तो मैं पूजूं पहार,
तातें यह चाकी भली, पीसि खाइ संसार।''

उस वक्त यह कहना कम हिम्मत और जोखिम की बात नहीं थी। कबीर की यह निर्भीकता चौंका देती है।

कबीर ने मूर्तिपूजा, अवतार, पैगंबर, पीर, औलिया, तीर्थ,

तिलक, माला, सब का खंडन किया। उनके पास तर्क की ताकत थी और जीवन से सीधे ग्रहण किए गए अनुभवों का विशाल भंडार। यह 'आंखन की देखी' में विश्वास रखते थे, 'कागद की लेखी' में नहीं। इसलिए उन के पास गर्वोन्नत स्वाभिमान है, जो धार्मिक जड़ता की विपरीत स्थितियों में भी सिर उठाए, पर्वत की तरह अडिग और बेलौस है।

अंधानुयायियों की अंधश्रद्धा

किंतु कबीर के इस क्रांतदर्शी व्यक्तित्व को बाद में उन के अंधानुयायियों ने मिट्टी में मिलाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उन के अग्निलपटों की तरह धधकते, सतेज व्यक्तित्व को रूढ़ियों के चौखटे में कस कर निर्जीव कर दिया गया।

परिणाम यह हुआ कि जिस युगांतकारी व्यक्ति ने पीर, पैगंबर, औलिया आदि के भजनपूजन का विरोध किया था, उसी की पूजा चल पड़ी. जिस युगपुरुष की तेजस्वी वाणी ने धार्मिक आडंबरों की धज्जियां उड़ा दी थीं, बाद में उसी के नाम पर तमाम अंधविश्वास गढ़ दिए गए।

अब तो हालत यह है कि कबीरोपासना पद्धति में आडंबर कदम-कदम पर छा गया है. वहां कबीर नहीं हैं और सब कुछ है. बाह्याचारों की हद यह है कि वहां सोने उठने का, तूंबा धोने का, दातुन करने, जल पीने तथा चूल्हे में आंच डालने तक का मंत्र दिया गया है। टोपी लगाने, दीपक बालने तक का सुमिरन दिया हुआ है।

यहां तक कि उन के शिष्यों ने अंधश्रद्धा में अभिभूत हो कर उन्हीं को 'ईश्वर' बना दिया।

बुद्ध भी करीब-करीब इसी त्रासदी के शिकार हुए और क्रांतिकारी विचार बाद में मंत्रतंत्र और अटपटे विधिविधानों में दब कर रह गए।

बुद्ध ने ईश्वर के विषय में कोई बात तक कहना पसंद नहीं किया, किंतु बाद में वह स्वयं 'भगवान बुद्ध' हो गए। उन के मध्यम मार्ग के सिद्धांत को एक ओर पटक दिया गया। आगे चल कर तो बौद्धमत में हीनयान और महायान के रूप में अनेक तांत्रिक क्रियाएं, बलि होने लगी।

बुद्ध और कबीर मत की यह दुर्दशा क्यों हुई? इसलिए कि उन के अनुयायियों ने बजाय विचार के अंधश्रद्धा से काम लिया और अंधश्रद्धा हमेशा घृणित विकृतियों तक ले जाती है।

फिर भी यह कहना अनुचित नहीं होगा कि कबीर और बुद्ध दोनों ही समाजसुधार के मामले में इसलिए पूरे खरे नहीं उत्तरते, क्योंकि ये साफ तौर से ईश्वर को नकार नहीं पाए, जो सब तरह के अंधविश्वास की जड़ है। शायद यह उन के वक्त के सोच की सीमा रही हो।

जो भी हो, इस कारण उन के धर्ममत रहस्यवाद से बच नहीं पाए और जब तक ईश्वरीय सत्ता, आध्यात्मिक रहस्य व गुह्यता को पूरी तरह खत्म नहीं किया जाता, तब तक ये विकृतियां दूर नहीं होंगी।

यह तयशुदा बात है कि केवल तर्कशक्ति से ही अंधविश्वास और जहालत की जंजीरों को काटा जा सकता है। अंधविश्वासों के पीछे कोई ठोस आधार नहीं होता। इसलिए पैने और सतर्क सवालों के आगे इन की पोल खुलते देर नहीं लगती और तब इन से जुड़ा मायावी तिलिस्म जमीन पर गिर कर किरच-किरच हो जाता है।

प्रगति की नई दिशा

आज की दुनिया विज्ञान के सहारे तेजी से आगे बढ़ रही है। कुछ सौ साल पहले के समाज की सोच और कल्पना की हदों से भी वह आगे निकल आई है। और इस से आधुनिक मनुष्य को एक नई दिशा, नई जीवन दृष्टि मिली है। उदाहरण के लिए करीब 100 साल पहले तक हम ग्रहों तथा ग्रहण आदि के बारे में बहुत कम जानते थे। इसलिए हम हमेशा उन के द्वारा होने वाले अनिष्ट की आशंका से डरते थे। पर आज ग्रहण की उन दकियानूसी कल्पनाओं और राहुकेतु के बारे में सोचते ही हंसी छूट पड़ती है।

पहले यह समझा जाता था कि सूर्य, चंद्रमा, शुक्र, बृहस्पति आदि ग्रहों पर देवी देवता तथा अन्य लोग रहते हैं जो मनुष्यों की अपेक्षा श्रेष्ठ तथा ज्यादा बुद्धिमान हैं। लेकिन पिछले कुछ दशकों के वैज्ञानिक आविष्कारों ने इस अंधविश्वास की भी पूरी तरह जड़ें खोद दी हैं। इसी तरह आज हम जानते हैं कि दिनरात, सूर्यग्रहण, चंद्रग्रहण आदि सूर्य, चंद्रमा तथा पृथ्वी की अपनी-अपनी गतियों के कारण होते हैं और उस के लिए बेकार ईश्वर जैसी बेतुकी कल्पना का बोझ ढोते रहने की कतई जरूरत नहीं है।

यह अच्छी बात है कि हमारे यहां भी अब विज्ञान और आधुनिकता की ओर बढ़ने का संकल्प किया गया है। लेकिन अपने निजी जीवन में हम घटिया संस्कारों से मुक्त नहीं हो पाए तो यह केवल हवाई चर्चा हो कर रह जाएगी। आगे बढ़ना है तो दो नावों की सवारी छोड़नी होगी, वरना कभी भी बीच धारा में डूबने का खतरा बना रहेगा।

इतिहास साक्षी है कि मनुष्य ने हमेशा अशिक्षा और

अंधविश्वासों के अंधकार को चीर कर प्रगति की राह तराशी है। धर्म के बड़े से बड़े तामझाम और धर्मगुरुओं व मठाधीशों के उद्धत अहंकार भी उस के आगे बढ़ते कदमों को रोक नहीं पाए. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसे खूबसूरत अभिव्यक्ति दी है : ''मनुष्य की जीवन शक्ति बड़ी निर्मम है, यह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है। न जाने कितने धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को धोती बहती यह जीवनधारा आगे बढ़ी है। संघर्षों से मनुष्य ने नई शक्ति पाई है।''

याद रखिए, जमाना तेजी से आगे बढ़ रहा है। हम भूतप्रेत की कहानियों, जादूटोनों और परीकथाओं में उलझे रहे तो लड़खड़ा कर गिर जाएंगे। तब हमारी प्रगति के सभी रास्ते बंद हो जाएंगे। हमारे समाज के कुछ वर्गों का कार्य तो बढ़ते कदमों पर रोक लगाना ही है। ये तरह तरह के प्रपंच कर के लोगों को गुमराह करते हैं। यह सब समाज के लिए अहितकारी है। इसलिए इन का त्यागना श्रेयष्कर है।

हमें औद्योगिक उन्नति के चक्कों के साथ, दौड़ते वक्त के साथ आगे बढ़ना है, जीना है और अपने जीने को प्रमाणित करना है। फिर हम अंधविश्वासों की सदियों पुरानी फालतू बातों की गठरी क्यों ढोते रहें?

(स्त्रोत : पुस्तक 'तर्क से काटिए अंधविश्वासों का जाल'– संपादक राकेश नाथ)

मेरे बेटे....

कभी इतने ऊंचे मत होना
कि कंधे पर सिर रख कर कोई रोना चाहे
तो उसे लगानी पड़े सीढ़ियां

इतने धार्मिक मत होना
कि ईश्वर को बचाने के लिए
इन्सान पर उठ जाए तुम्हारा हाथ

न कभी इतने देशभक्त
कि घायल को उठाने को
झंडा ज़मीन पर न रख सको !

कविता कादंबरी

कविता

इतिहास को शरण्य बनाना

जीवित ही क़ब्र में लेट जाने के समान होता है।
इतिहास से कुछ भी न सीखना
कुछ यूँ होता है जैसे बिना ज़मीन को जाने–पहचाने
बीज छीटे जायें अगली फसल के।
इतिहास का अंधानुकरण कुछ यूँ होता है
जैसे गड़रिए के बूढ़े कुत्ते के पीछे
चलता है भेड़ों का रेवड़।

इतिहास से सीखने का मतलब है
बीती हुई चीज़ों को देखना
आलोचनात्मक विवेक के साथ,
कुछ खोई हुई चीज़ों को
फिर से पा लेने के लिए उद्यम करना
और उन नयी चीज़ों के बारे में जानना
जिनका आविष्कार किया जाना है।
इतिहास से सीखना
पूर्वजों के अनुभवों पर
उनके साथ संवाद और बहस करना होता है
ज़रूरी नतीजों तक पहुँचने के लिए।
यह अपनी सोई हुई जड़ों को
सक्रिय करने के समान होता है
मिट्टी की गहराइयों से पोषक रस सोखकर
ऊपर उठती टहनियों और कोंपलों तक
पहुँचाने के लिए।

हमारे समय के इस संगीन अँधेरे में
इतिहास से सीखने का मतलब है
उस सवाल का जवाब ढूँढ़ना जो
सलीब पर लटकाये जाते समय ग़ुलाम डेविड ने
अपने सेनापति और दोस्त स्पार्टाकस से पूछा था:
स्पार्टाकस, हम क्यों हारे?

कविता कृष्णपल्लवी

**धर्म एक जाल है,
जो गरीबों को उत्पीड़ित और अज्ञानी रखता है।
– पेरियार**

केस रिपोर्ट

– अजायब जलालआना



मैं कृष्ण से शादी करना चाहती हूं...

उपरोक्त शब्द एक सात वर्षीय बच्ची के हैं!

छोटी छोटी बच्चियों द्वारा ऐसे शब्द अध्यात्म से जोड़कर न जाने कितनी बच्चियों के बाल मन के अंदर जमा हुई अनेकों उलझनो को दरकिनार कर दिया जाता है।

ऐसे शब्दों को बार बार बोलकर पता नहीं कितनी बच्चियों की जिंदगी खतरे में डाल दी जाती है और फिर एक कहानी मीडिया के जरिए सुर्खियां बनती नजर आती है...

खैर, इस घटना में एक बच्ची की जान बचाने में उस परिवार के रिश्तेदारों, जो तर्कशीलों से वाकिफ था, ने अहम भूमिका निभाई.. जिनकी बदौलत सात वर्ष की बच्ची आखिरकार अपने बाल मन की उलझनों को सुलझाने में कामयाब रही...

तर्कशील सोसाईटी कालांवाली के पास कुछ समय पहले साथ लगते एक शहर से ऐसा गंभीर केस आया....

सात वर्ष की एक बच्ची प्राइवेट स्कूल में पढ़ती है, वह अक्सर घर आकर कहती है, ''मुझे कृष्ण से शादी करवानी है..!'' पहले तो परिवार ने इस बात पर ज्यादा गौर नहीं किया, फिर जब उसने ज्यादा ही जिद की तो उसे एक धार्मिक स्थल पर ले जाया गया, वहां के पुजारी को देखकर लडकी ने जोर जोर से चिल्लाना शुरू कर दिया...

उसे वापिस घर ले आए, अब वो बार बार रोने लगी रहती...एक दिन लड़की की मां स्कूल वैन से स्कूल गई तो मामला कुछ साफ लग रहा था, क्योंकि रास्ते में नौवीं क्लास में पढ़ने वाला एक लड़का था, जिसने गेरूए रंग के कपड़े पहने हुए थे, जैसे कोई बाबा हो गले में मालाएं और सिर के लंबे लंबे बाल...

उनकी बेटी की कक्षा की प्रभारी को उस लड़के के बारे में पता चला जो नौवीं कक्षा में पढ़ रहा था, प्रभारी ने बताया वह बड़ा होकर एक संत महात्मा बनेगा... और यह भी पता चला कि उसकी सात वर्ष की लड़की उन्हें कृष्ण का रूप मान रही थी।

अब वह लडकी घर आकर लगातार रोती रहती, उसे डॉक्टरों के पास ले जाया गया, कोई फर्क नहीं पड़ा..इस परेशानी में उसने रिश्तेदारों को बुलाया.. बच्ची ने बड़बड़ाते हुए कहा कि पुजारी मुझे मार डालेगा, देखो वो आ रहा है! .. मुझे बुरे (गंदे) विचार आ रहे हैं... मेरी शादी कृष्ण से कर दो..!

लगातार ऐसी बातें सुनने के बाद कोई भी माता–पिता चैन से नहीं बैठ पाएगा..दूसरी बात वह 2–2 घंटे तक लगातार रोती रहती थी।

लडकी को ठीक करवाने के लिए उन्होंने ओर बहुत भाग दौड़ की, परंतु सफलता कहीं से भी नहीं मिली। रिश्तेदारी में एक शिक्षक ने अंततः तर्कशील परामर्श केंद्र से संपर्क किया और उपरोक्त कहानी बताई...

जब परिवार बच्ची को परामर्श केंद्र में लाया तो वे बहुत घबराया हुआ था... लड़की भी बहुत डरी हुई थी... उन्हें पहले ही मना कर दिया गया था कि लड़की के बारे में अब लड़की के सामने हमें कुछ भी न बताएं...बाल मनोविज्ञान के तहत लड़की को अपनापन दिया गया। हल्की फुल्की बातें, हँसी मज़ाक, जादू, खेल आदि के बहाने लड़की को पता ही नहीं चलने दिया कि वह किसी पराये घर में आ गयी है...!

उससे बातों बातों में से पता कर लिया... 9वीं क्लास में पढ़ने वाला लड़का उसे वैन में बुलाता था, टॉफी देता था...ये भी पता चला कि लड़की ने घर के मोबाइल फोन पर एक एडल्ट मूवी क्लिप देखी थी..लड़की की दादी उसके ईलाज के लिए एक अन्य बाबा/मौलवी के पास ले गई थी और उसने लड़की को डरा दिया था। जिसके कारण वह अब आम पुजारी से भी डरने लगी।

बच्ची को आरामदायक नींद में ले जाया गया...बच्ची के मानसिक विकार और गलत विचारों को दूर करने के लिए सकरात्मक सुझाव दिए गए...गहरी नींद से जागने के बाद उसका चेहरा अब ठीक लग रहा था...बच्ची की माता जो अलग जगह पर बैठी थी उसे मां होने के कारण सुझाव दिए गए कि आप किसी देवी, ओपरी पराई में विश्वास करने की बजाए आपको बाल मनोविज्ञान के बारे में अच्छी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए... लड़की के साथ हुई घटनाओं, और वातावरण से मिले प्रभाव को बदलने के लिए उन्हें ठोस सुझाव दिए गए।

लड़की की इच्छा के अनुरूप स्कूल बदला, हम उम्र के बच्चों के बीच खेलने, उनके साथ हमदर्दी, **शेष पृष्ठ 20 पर**

सांप कभी दूध नहीं पीता और न ही कोई नागमणि होती है

–टिकेश कुमार

समाज में सांप के दूध पीने की बात होती है और लोग अफवाह के चलते सांप को दूध पिलाने के लिए नागराज सांप की मूर्ति में दूध को चढ़ाने के लिए लंबी लाइन लगाकर एक–एक करके सभी कटोरी–गिलास, लोटे भर दूध को उलचकर आ जाते हैं।

नागराज (King Cobra) जिसे लोग नागदेव या शेषनाग भी कहते हैं

नागराज को लोग देव के रूप में पूजते हैं। नागराज को पूजने के लिए हर साल एक दिन नांगपंचमी के रूप में मनाया जाता है। विशेषज्ञ की माने तो नागराज दुनिया में सबसे लंबा और जहरीला सांप है। यह 18 फिट तक बढ़ता है। भारत में यह सांप दक्षिण राज्यों तथा आसम, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा में मिलता है। काले, हरे और भूरे रंग में होता है। इस सांप के शरीर पर उलटे (V) के लकीरों के सफेद पीले रंग के चौड़े पट्टे होते हैं। बढ़ती उम्र के हिसाब से पट्टे धुंधले हो जाते हैं। इसका फन शरीर के अनुपात से बहुत छोटा होता है। यह अपना शरीर जमीन से 3 फीट तक ऊपर उठाता है।

सांप कभी दूध नहीं पीता है

सांप के दूध पीने की बात सरासर गलत है, क्योंकि सांप जब पृथ्वी पर था तो उस वक्त कोई स्तनधारी प्राणी जो दूध देता हो, नहीं था। इसीलिए उसका मुख्य खाद्य अनेक प्रकार के कीड़े, चूहे हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से सांप के होंठ नहीं होते और न ही उसकी शरीर की बनावट दूध हजम करने लायक बनी है। वह पूरी तरह से मांसाहारी है, अगर दूध पिला दिया जाए तो सांप मर जाता है।

हजारों लीटर दूध बर्बाद होता है

नांगपंचमी में नागसांप को दूध पिलाने के नाम पर हजारों लीटर दूध नाली में बह जाता है। लोग सुबह से नागदेव पर इतना दूध उधेड़ता है, जैसे वह दूध नहीं पानी हो। एक तरफ लोगों के पीने के लिए दूध नहीं है तो दूसरी तरफ अंधविश्वास के चलते दूध को मंदिर की मूर्तियों में डालकर पूरा दूध गन्दी नाली में बह जाता है। किसी को कुछ नहीं मिलता।

नाग के पास कोई नागमणि नहीं होती है

सांप के पास किसी भी प्रकार की मणि नहीं होती। यह सब फिल्म, कहानियां, टीवी चैनल और बड़े बुजुर्गों से सुनी कथाओं से उपजी हैं। किसी भी व्यक्ति ने आज तक नागमणि नहीं देखी है, सब कही–सुनी बातों पर विश्वास कर लेते है और उसी अफवाह को समाज में लगातार पीढ़ी–दर–पीढ़ी फैलाते रहते है।

इच्छाधारी नाग नहीं होता है

इच्छाधारी नाग–नागिन अपनी इच्छा से कोई भी रूप धारण कर लेता है, ऐसा फिल्मों में दिखाया जाता है, वह सब एक मनगढ़ंत कहानी है। कोई इच्छाधारी नाग–नागिन नहीं होता है। यह भी कहा जाता है कि इच्छाधारी नाग या नागिन को मार दिया जाता है तो दूसरा इच्छाधारी नाग सांप को मरे हुए नाग की आंखों में मारे हुए व्यक्ति दिखाई देता है और बदला लेता है। यह भी सरासर अंधविश्वास है। आज तक कोई इच्छाधारी नाग–नागिन नहीं देखे है, सब अफवाहों और टीवी के काल्पनिक धारावाहिक के कारण लोग उसे सही मानने लगते हैं।

अध्यक्ष, एंटी सुपरस्टीशन ऑर्गेनाइजेश (एएसओ)
संदर्भ – 'सर्पविज्ञान' किताब – गजेन्द्र सुरकार)

जो अलौकिक शक्तियों का दावा करते हैं
वह या तो धूर्त होते हैं या फिर मानसिक रोगी।
– अब्राहम टी. कोवूर

पृष्ठ 19 का शेष प्यार से पेश आना, अच्छे व्यवहार, आत्म विश्वास से उसका विशेष ख्याल रखना आदि बातें बताई गई।

एक काउंसलिंग से लड़की आधे से ज्यादा ठीक हो गई..! क्योंकि कुछ दिनों तक उसे अपनी मां के साथ अपने खास रिश्ते में रहने के लिए कहा गया... दूसरी काउंसलिंग में वह लड़की स्वयं उन्हें अपना घर मानकर केंद्र लेकर आई..! सिर्फ एक असरदार ट्रिक, सकारात्मक की गई बात चीत और मां को 4–5 किताबें जो मनोविज्ञान पर आधारित थी पढ़ने के लिए देकर तर्कशील परामर्श केंद्र से विदायगी दी गई... कुछ दिनों के बाद उन्होंने खुद बताया कि लड़की अब बिल्कुल ठीक है, और वह अब बहुत खुश है ..!

94167 24331

जनता को समर्पित वैज्ञानिक-जॉन डेसमंड बर्नाल

योद्धा सिंह



जॉन डेसमंड बर्नाल का जन्म 10 मई, 1901 को आयरलैंड में हुआ। बर्नाल ने अपनी पढ़ाई 1922 में कैंब्रिज से पूरी की। गणित और विज्ञान में शिक्षा प्राप्त करने के बाद, उन्होंने भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में क्रिस्टलोग्राफी को चुना और एक्स-रे स्पेक्ट्रो गोनियोमीटर विकसित किया। इसकी मदद से उन्होंने विटामिन बी-1, कोलेस्ट्रॉल, पेप्सिन, विटामिन डी-2 आदि जैविक पदार्थों का अध्ययन किया। फिर 1937 में, बर्नाल लंदन विश्वविद्यालय के एक कॉलेज में प्रोफेसर नियुक्त हुए। लेकिन उनकी वैज्ञानिक उपलब्धियों से भी अधिक महत्वपूर्ण एक ऐसा पहलू था, जिसके कारण आज उनके बारे में बात करने की आवश्यकता है। बर्नाल एक ऐसे वैज्ञानिक थे जो केवल प्रयोगशाला की चारदीवारी तक सीमित रहकर शोध कार्य करने में विश्वास नहीं रखते थे, बल्कि उन्होंने अपना पूरा जीवन इस उद्देश्य के लिए समर्पित कर दिया कि विज्ञान को कैसे आम लोगों के भले के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है और विज्ञान को पूंजीवादी नियंत्रण से मुक्त करने में लोग कैसे भूमिका निभा सकते हैं।



इसी लोक सरोकार के कारण 1923 में बर्नाल ने 'ग्रेट ब्रिटेन की कम्युनिस्ट पार्टी' की सदस्यता ले ली। मार्क्सवाद और क्रांतिकारी पार्टी से जुड़ने के बाद उनकी वैज्ञानिक समझ के साथ-साथ सामाजिक चेतना भी विकसित हुई।

उनके जीवन में एक महत्वपूर्ण मोड़ तब आया जब 1923 में लंदन में विज्ञान और तकनीक के इतिहास से संबंधित एक अंतर्राष्ट्रीय संमेलन हुआ। इसमें सोवियत वैज्ञानिकों का एक प्रतिनिधिमंडल भी आया था, जिनका नेतृत्व निकोलाई बुखारिन कर रहे थे। इस संमेलन में सोवियत भौतिक विज्ञानी बोरिस हेझन ने न्यूटन की पुस्तक 'प्रिंसिपिया' पर एक महत्वपूर्ण शोध पत्र पढ़ा। इस शोध का मुख्य बिन्दु यह था कि यदि हमें आज के विज्ञान को समझना है, तो इतिहास की जांच से शुरुआत करनी होगी। विज्ञान को ऐतिहासिक संदर्भ में देखने की यह मार्क्सवादी पद्धति वास्तव में पूंजीवादी पद्धति से बिल्कुल अलग और विरोधी थी, जिसके अनुसार विज्ञान को विचारधारा और इतिहास से अलग और निष्पक्ष माना जाता था। किसी लेखक ने बर्नाल पर सोवियत प्रतिनिधिमंडल के प्रभाव को व्यक्त करते हुए लिखा:

''बर्नाल का दिल अटक गया। वह सोवियत प्रतिनिधिमंडल को देख रहा था। सोवियतों की दार्शनिक समझ, उनकी सूक्ष्मता, समाज के प्रति उनका प्रेम और आम लोगों के लिए उनका विशाल जिगरा। उन पर जो प्रभाव पड़ा वह बेमिसाल था।''

इसके बाद बर्नाल ने इस पद्धति को अपनाकर काम करना शुरू किया। उन्होंने विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए सरल भाषा में लिखी गई अपनी पुस्तकों में विज्ञान के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण को प्रचारित किया। उनके वैज्ञानिक लेखन को निम्नलिखित बिंदुओं में विभाजित किया जा सकता है:

1. बर्नाल ने विज्ञान का इतिहास लिखकर यह साबित किया कि विज्ञान किस प्रकार मानव की उत्पादन आवश्यकताओं के साथ कदम दर कदम विकसित हुआ है और आगे भी विकसित होता रहेगा। लेकिन पूंजीवाद इसके रास्ते में बाधा बन चुका है। आज पूंजीवाद के अधीन विज्ञान का उपयोग पूंजीपति केवल अपने मुनाफे को बढ़ाने के लिए करते हैं। इसलिए विज्ञान की प्रगति के लिए समाजवादी व्यवस्था का आना आवश्यक है, जहां विज्ञान का उपयोग जनहित में किया जाएगा और यही समाज विज्ञान के विकास का मार्ग भी प्रशस्त करेगा।

2. विज्ञान का विकास कुछ जीनियस ही नहीं करते: बर्नाल ने इस गलत धारणा का खंडन किया कि विज्ञान की सृजना केवल कुछ चुनिंदा वैज्ञानिक या जीनियस ही करते हैं। इसके विपरीत, उन्होंने अपनी सभी रचनाओं और कार्यों के माध्यम से हमेशा यह साबित किया कि विज्ञान के विकास में व्यक्तिगत भूमिका होती है, लेकिन मुख्य भूमिका मेहनतकश जनता की होती है, जिनकी सदियों पुरानी मेहनत ही उस आधार को तैयार करती है जिसके सहारे विज्ञान का विकास संभव होता है।

बर्नाल की कुछ महत्वपूर्ण किताबें हैं :-

1. विज्ञान का सामाजिक कार्य (1939)

1931 के संमेलन के बाद बर्नाल सोवियत संघ के वैज्ञानिकों से प्रभावित हुए और समाजवादी देश में विज्ञान के क्षेत्र में हो रहे कार्यों की तुलना ब्रिटेन की अव्यवस्था से की। 1939 में उन्होंने 'द सोशल फंक्शन ऑफ साइंस' पुस्तक

शेष पृष्ठ 23 पर

उदासी, बेचैनी और मानसिक रोगों का युग

– रविंदर

जब हम स्वास्थय समस्याओं की बात करते हैं, तो सबसे पहले हमारे मन में शारीरिक समस्याओं का खयाल आता है, जैसे कोई बीमारी, बुखार, हाथ–पैर का दर्द आदि। लेकिन मानसिक रोगों के बारे में हमारे समाज में बहुत कम चर्चा होती है और उन्हें कम ही अहमियत दी जाती है। कोई नौजवान अक्सर अपनी मानसिक परेशानियों में उलझा रहता है, पर किसी से बात नहीं कर पता। हमारे समाज में मानसिक रोगों को लेकर पूर्वाग्रह बने हुए हैं। जब कोई इंसान अपनी मानसिक परेशानी के बारे में बात करता है या फिर मनोचिकित्सक के पास जाने की बात करता है, तो उसे पागल, कमजोर कह दिया जाता है। हमारे समाज में अंधविश्वास की मौजूदगी मानसिक रोगों को समझने और इलाज करने में एक बड़ी रुकावट पैदा करती है। मानसिक परेशानी को, तनाव के कारण दौरे पड़ने को अक्सर किसी बुरी ताकत, भूत–प्रेत का साया मान लिया जाता है, और इसका इलाज अनपढ़ तांत्रिक बाबाओं से कराया जाता है।

आज भारत में ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया में मानसिक रोग तेजी से बढ़ रहे हैं। 'विश्व स्वास्थय संगठन' के अनुसार दुनिया भर में 30 करोड़ लोग अकेलेपन की बीमारी से पीड़ित हैं। हर साल 80,0000 लोग मानसिक परेशानियों के चलते आत्महत्या कर लेते हैं।

भारत में भी पिछले समय में उदासी, बेचैनी, अकेलापन, नींद की समस्या, मानसिक रोगों आदि के मामलों की संख्या में 25 से 30 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। साल 2020 के दौरान कोरोना लॉकडाउन और उसके बाद अकेलेपन की बीमारियों में 30% की वृद्धि हुई और घबराहट, तनाव रोग में 31% की वृद्धि हुई। दिसंबर 2023 की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत के 74% लोग तनाव महसूस करते हैं। साल 2022 में 1 लाख 71 हजार लोगों ने आत्महत्या की है। साल 2018 से 2022 तक आत्महत्याओं में यह वृद्धि 27% है। भारत में 15 से 24 साल की उम्र वाले नौजवानों की संख्या कुल आबादी का 10% है और यूनिसेफ की रिपोर्ट के अनुसार, नौजवानों की बड़ी संख्या मानसिक रोगों का शिकार हो रही है। हर 7 में से 1 नौजवान जीवन जीने के लिए उत्साह और रोजमर्रा के काम करने की इच्छा खो रहा है। भारत में हर दिन ही किसी न किसी छात्र की आत्महत्या की खबर सुनने को मिलती है। पंजाब में भी खेत मजदूरों, गरीब किसानों की आत्महत्याओं की खबरें सामने आती हैं।

मानसिक रोगों के लक्षण :

मानसिक समस्याओं में अक्सर मानव मस्तिष्क सही ढंग से सोचने, उचित निर्णय लेने की क्षमता को एक प्रक्रिया में खो देता है। जीवन में, लोगों में, अच्छाई में विश्वास न रहना, खुद के बारे में, आसपास के बारे में सिर्फ नकारात्मक विचारों से घिरा रहना। उदासी में डूबे रहना, छोटे से छोटे काम करने में कोई उत्साह न महसूस करना, कुछ भी गलत होने पर खुद को ही दोषी मानना। आस–पास के लोगों से, प्रकृति से और खुद से भी बेगाना महसूस करना, अकेले और अंधेरे कोने में रहना, लोगों के बीच जाने और लोगों के साथ रहने से बचना आदि मानसिक रोगों के लक्षण हैं।

मानसिक रोगों के बारे में जानकारी :

जब से यह समस्या बड़े पैमाने पर सामने आ रही है, तब से सोशल मीडिया पर जागरूकता फैलाने वाली विज्ञापन, शॉर्ट फिल्मों को देखा जा सकता है। इनका विषय अक्सर मानसिक रोगों के इलाज, समय पर डॉक्टर के पास जाने, माता–पिता से बात करने आदि के इर्द–गिर्द घूमता है। बेशक जो व्यक्ति मानसिक परेशानी से गुजर रहा है, उसके लिए समय पर इलाज करवाना जरूरी है। लेकिन इस सब में मानसिक रोगों के कारणों पर चर्चा लगभग गायब है। अगर कारणों पर बात की भी जाती है, तो जीव विज्ञान, मस्तिष्क की संरचना में इसकी जड़ें ढूंढने की कोशिश की जाती है, जो सबसे बड़ी गड़बड़ी है। मनुष्य की शारीरिक और मानसिक सेहत कैसी होगी, यह उसके आस–पास के समाज पर निर्भर करता है।

समाज और मानसिक रोग:

मानसिक रोग कोई भी इंसान जन्मजात लेकर पैदा नहीं होता। हमारे समाज में ही मानसिक रोग उत्पन्न होने के कारण मौजूद हैं। बचपन में हुई कोई बुरी घटना जैसे बच्चों का यौन शोषण, घर का झगड़े वाला माहौल, बचपन से ही मानसिक विकार की शुरुआत कर देता है। नौजवान होने तक पढ़ाई–लिखाई करने, नौकरी हासिल करने की एक दौड़ में शामिल होना इस समाज का नियम है। हमारे समाज में सफलता का मतलब है ऊंचे पद पर बैठना, अच्छा पैसा कमाना। अगर आप ज्यादा पैसे कमाने वाली नौकरी हासिल नहीं कर पाए, तो आप असफल नौजवान हैं।

आज शिक्षा जीवन जीने का तरीका और अच्छा इंसान

बनने का साधन नहीं, बल्कि ज्यादा पैसा कमाने का व्यवसाय है। पर सच्चाई यह है कि महंगी डिग्री हासिल करने के बाद भी कितने ही नौजवानों को नौकरी नहीं मिलती। नौजवान बड़े पैमाने पर नौकरी के लिए परीक्षाएं देते हैं, लेकिन नौकरियां कम होती हैं और पेपर देने वाले लाखों। इसलिए स्वाभाविक है कि कम को छोड़कर बाकी ''असफल'' होंगे, लेकिन हमारे समाज में असफलता का दोषी खुद नौजवान को बना दिया जाता है जो इस मौके को ''पकड़'' नहीं सका। महंगी डिग्रियां, अनिश्चित भविष्य उन्हें निराशा में डुबो देता है। अच्छी जिंदगी पाने की निराशा उसे डुबोने लगती है। अक्सर छात्रों के आत्महत्या पत्र में यह लिखा होता है ''माफ करना माता-पिता, मैं उम्मीदों पर खरा नहीं उतरा, मुझसे ओर नहीं हो रहा।''

मानसिक रोगों के उत्पन्न होने के कई तात्कालिक कारण होते हैं-गरीबी, आर्थिक तंगी, बढ़ती महंगाई, बीमारी, कोई बुरी सामाजिक घटना आदि-पर इसकी जड़ इस पूंजीवादी ढांचे में है। पूंजीवादी ढांचा लोगों को केवल औपचारिक आज़ादी देता है यानी यहां पूंजीवादी व्यवस्था द्वारा दिखाए गए अनगिनत सपनों (बड़ा सरकारी अफसर, पूंजीपति, खिलाड़ी, अभिनेता, बड़ी कोठी, महंगी कारें, ब्रांडेड कपड़े आदि) को पूरा करने के रास्ते में कोई भी (या बहुत कम) कानूनी रुकावट नहीं है। हर मनुष्य (अमीर या गरीब) इन सारे सपनों को पूरा करने के लिए कानूनी रूप से आजाद है। यह कानूनी आजादी पुराने ढांचे (जमींदारी) से एक प्रगति है, लेकिन बड़ी आबादी के लिए यह कानूनी आजादी केवल छल साबित होती है। कानूनी आजादी होने के बावजूद, आबादी के बड़े हिस्से के पास इन सपनों को पूरा करने के लिए आर्थिक संसाधन (जिस पर देश के अमीर कुंडली मार कर बैठे हैं) की कमी है। पूंजीवाद लोगों को तरह-तरह के सपने दिखाता है, उनकी इच्छाएं जगाता है, और इच्छाएं पूरी न होने की स्थिति में लोगों को ही दोषी ठहराता है। पूंजीवाद में इन बढ़ी हुई इच्छाओं और उन्हें पूरा करने के साधनों की कमी के बीच का अंतर ही मानसिक रोगों रूपी खाई का असली कारण है। मानसिक रोगों को खत्म करने का काम भी इस पूंजीवादी ढांचे के खात्मे से ही जुड़ा हुआ है। लोगों को-जो सारी संपत्ति के सृजनकर्ता हैं-यह सिखाना कि वे अपनी इच्छाओं का त्याग करें, त्यागवादी बनें, प्रभु की मर्जी मानें, अनैतिक है। असली हल यह बताना है कि एक अच्छी जिंदगी का सपना तभी पूरा हो सकता है, जब आर्थिक संसाधनों पर पूंजी की इजारेदारी को खत्म किया जाएगा।

स्रोत : ''ललकार''-सितंबर 2024 (पंजाबी पत्रिका)

पृष्ठ 21 का शेष लिखी, जिसमें उन्होंने विज्ञान के विकास में आने वाली बाधाओं के बारे में लिखा। इस पुस्तक में बर्नाल ने पूंजीवादी देशों में विज्ञान के विकास की समस्याओं का मूल्यांकन किया और इसके विकल्प के रूप में समाजवादी देशों में विज्ञान की प्रगति के मॉडल की प्रशंसा की।

2. इतिहास में विज्ञान (Science in History) (1954)

विज्ञान के इतिहास को समझने के लिए बर्नाल ने ऐतिहासिक भौतिकवादी पद्धति का उपयोग करते हुए गहराई से काम किया और 'साइंस इन हिस्ट्री' नामक पुस्तक प्रकाशित की, जो चार खंडों में है। पहले भाग में उन्होंने हजारों साल के मानव इतिहास की चर्चा की और दिखाया कि विज्ञान का विकास मानव श्रम के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। चौथे भाग में उन्होंने विज्ञान और समाज के आपसी संबंधों पर चर्चा की। विज्ञान के किसी भी छात्र को, जो विज्ञान को उसके ऐतिहासिक संदर्भ में समझना चाहता है, यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

3. जीवन की उत्पत्ति (1967)

हालांकि बर्नाल एक भौतिक वैज्ञानिक थे, उनका शोध का मुख्य कार्य क्रिस्टलोग्राफी था। उन्होंने 1967 में यह महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी जो जे.बी.एस. हाल्डेन और अलेक्जेंडर ओपेरिन की पुस्तक का विस्तार थी। यह भी भौतिकवादी द्वंद्वात्मक पद्धति का उत्कृष्ट उपयोग था। बर्नाल ने इस पुस्तक में अपनी क्रिस्टलोग्राफी की समझ को 'मॉलेक्यूलर' जीव विज्ञान पर लागू करते हुए जीव की उत्पत्ति के सिद्धांत को ओर मजबूत किया।

बर्नाल की सामाजिक भूमिकाः

वैज्ञानिक योगदान के अलावा, बर्नाल ने अपने सामाजिक कर्तव्यों को भी बेहतरीन तरीके से निभाते हुए हमेशा शोषण, जुल्म और साम्राज्यवादी युद्धों के खिलाफ आवाज उठाई। उन्होंने, ऐल्डस हक्सले और अन्य वैज्ञानिकों के साथ मिलकर एक आंदोलन शुरू किया जिसका नाम था 'वैज्ञान के सामाजिक संबंध'। इसका केंद्रबिन्दु यह था कि विज्ञान का उपयोग आम लोगों के भले के लिए होना चाहिए। विज्ञान के सामाजिक संबंध ने ब्रिटिश सरकार पर जोर दिया कि वह विज्ञान को समाज से जोड़ने के प्रयास करे। बर्नाल का मानना था कि ज्ञान और विज्ञान का मुख्य कार्य समाज को बदलना और मेहनतकश जनता की भलाई है। उनकी इस विरासत को आगे बढ़ाते हुए हमें भी यह जानने और सीखने की जरूरत है कि हम भी अपने ज्ञान और विज्ञान को समाज को बदलने के संघर्ष से कैसे जोड़ सकते हैं। **(साभारः ललकार, पंजाबी पत्रिका, सितंबर 2024)**

अंधविश्वास ही अंधविश्वास

-उपेन्द्र कुमार

चाहे कोई भी हो, यह मानने को कतई तैयार नहीं है कि वह अंधविश्वासी है, किसी को गाली देने से जैसे कोई शख्स दुखी और गुस्से हो जाता है, वैसे ही किसी को अंधविश्वासी कहने से भी वह गुस्से हो जाता है, अंधविश्वासी कहलाना कोई भी नहीं चाहता, पर अंधविश्वास है क्या-क्या, यही उन्हें पता नहीं होता।

हालांकि यह सभी मानने को तैयार हैं कि अंधविश्वास और सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक बुराईयां, परंपरा, रस्मोरिवाज हमारी तरक्की में बहुत बड़ी रुकावट हैं।

देश में 'अर्जक संघ' समेत कई ऐसे संगठन हैं, जो अंधविश्वास के साथ-साथ समाज में फैली बुराईयों को खत्म करने में जुटे हैं।

हम यहां कुछ अंधविश्वासों, परंपराओं व बुराइयों की ओर आप का ध्यान खींच रहे हैं:-

*सुबह उठते ही अपनी दोनों हथेलियां देखना।

*अगर कोई काम नहीं हो सका, तो यह कहना कि न जाने हम किस का मुंह देख कर उठे थे।

*नहा धो कर सुबह एक लोटा पानी सूरज की ओर गिराना और कान ऐंठ कर प्रणाम करना।

*सुबह सवेरे नहा धोकर तुलसी के पौधे में पानी डालना।

*दिन के मुताबिक रंगीन कपड़ों को पहनना, भोजन करना।

*बाहर निकलते समय घर के लोगों को दही, चीनी खाने को कहना और माथे पर टीका लगाना।

* अगर कोई छींक दे, तो अशुभ मान कर रुक जाना।

* रास्ते में अगर आगे से बिल्ली चली जाए, तो वहीं रुक जाना।

* अगर बच्चा या कोई शख्स बीमार पड़ जाए, तो झाड़फूंक कराना।

* किसी को सांप-बिच्छू काट ले तो झाड़फूंक कराना।

* हाथ में गंडातावीज बांधना और काला टीका करना।

* बच्चे के जन्म के बाद उसके पास लोहे की चीज रखना।

* नवजात बच्चे को किसी को इसलिए नहीं दिखाना कि कहीं नजर न लग जाए।

* बच्चे के हाथ पैर, कमर में काला धागा बांधना या काला टीका लगाना।

*जन्म के बाद किसी को बुला कर पत्री दिखाना और उसके कहने पर कर्मकांड करना।

* नाम रखने के लिए किसी पर आश्रित रहना।

* पढ़ने की शुरुआत किसी खास दिन से करना और पुरोहित से पूछ कर स्कूल भेजना।

* कहीं बाहर जाने से पहले पत्री दिखाना और उसी के मुताबिक चलना।

* नए घर जाने से पहले पूछ कर तारीख तय करना।

* शादी के पहले दिन दिखाना और उसी से शादी या श्राद्ध कराना।

* कोई भी कर्मकांड करने या त्यौहार के बाद दान देना।

* त्यौहार के नाम पर पत्थर, मिट्टी की मूर्ति के सामने गिड़गिड़ाना।

* किसी चमत्कार के बाद उस की वजह को ढूंढने के बजाय ईश्वरीय शक्ति मान बैठना।

* अपनी गरीबी, जोरजुल्म से लड़ने के बजाय 'तकदीर में लिखा है' कह कर चुप बैठ जाना।

* शरीर से ठीक-ठाक होने के बावजूद घर-घर घूमते साधु महात्मा के नाम पर लोगों को दान देना।

* शादी के समय काला कपड़ा नहीं पहनना।

* शादी के समय किसी विधवा को नहीं रहने देना।

* मरने के बाद कर्मकांड करना, सिर मुंडवाना, ब्रह्मभोज करना, दान देना।

* सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण लगने पर भोजन नहीं करना और दान देना।

* वास्तुशास्त्र के मुताबिक ही मकान बनवाना।

* ज्योतिष से हाथ दिखाना, भविष्यफल देखना और उसके बताए उपाय करना।

* रविवार को हल नहीं चलाना।

* देवी-देवता की पूजा किए बगैर धान नहीं रोपना।

ओर भी ऐसी कई बातें हैं, जो अंधविश्वास मानी जाती हैं। हमें वैज्ञानिक सोच पैदा करने की जरूरत है, ताकि जिंदगी में तरक्की के रास्ते पर चल सकें। इससे एक फायदा यह भी होगा कि जो बगैर मेहनत किए अपना पेट पाल रहा है, वह मेहनत की अहमियत समझ कर ओर ज्यादा मेहनत करने लगेगा, देश और समाज तरक्की की ओर बढ़ सकेगा।

इन सब प्रपंचों से धर्म के दुकानदारों को पैसा मिलता है। अंधविश्वास सीधे पंडों की जेबों से जुड़े हैं।

साभार -''सरिता'' पत्रिका

नेत्रदान को पारिवारिक परम्परा बनाये

– डॉ. दिनेश मिश्र



एक व्यक्ति के नेत्रदान के द्वारा दो दृष्टिहीन व्यक्तियों के जीवन में प्रकाश आ सकता है, स्वयं तथा अपने परिवार के सदस्यों को नेत्र दान के लिए प्रेरित कर नेत्र दान को अपनी पारिवारिक परम्परा बनाएं।

राष्ट्रीय नेत्रदान पखवाड़ा के अवसर पर रामकृष्ण शिक्षण संस्थान में आयोजित स्वास्थ्य शिविर में डॉ. दिनेश मिश्र (नेत्र रोग), डॉ. वी पी पाठक (जनरल फिजिशियन), डॉ. सृष्टि मिश्र (त्वचा रोग विशेषज्ञ), डॉ. सुरभि मिश्र (कान नाक गला विशेषज्ञ), डॉ. अबीर मिश्र (डेंटल सर्जन) ने निशुल्क सेवाएं दीं।

किसी दृष्टिहीन व्यक्ति के कठिनाई भरे जीवन का अंदाजा सिर्फ आप कुछ पलों के लिए अपनी आँखें बंद कर ही लगा सकते हैं। आँखें बंद करते ही मन में एक भय व असुरक्षा की भावना समा जाती है और तत्काल आँखें खोलने पर मजबूर हो जाते हैं। प्रकाश व दृष्टि से परे, जीवन का एक दूसरा रूप यह भी जानिए कि पूरी दुनिया में करीब 3 करोड़ लोग पूरी तरह से दृष्टिहीन हैं। भारत में 1 करोड़ 20 लाख लोग पूरी तरह से दृष्टिहीन हैं। 80 लाख लोगों की एक आँख खराब है तथा 4–5 करोड़ लोग कम दृष्टि के कारण घर से बाहर निकलने, मन–माफिक काम करने, चलने–फिरने से पूरी तरह बाधित हैं।

प्रकृति ने जीव को दृष्टि एक ऐसा अमूल्य उपहार दिया है जिसकी कोई कीमत नहीं आंकी जा सकती है। जिस अंधकार में हम एक क्षण बिताने की कल्पना नहीं कर सकते, उसी गहन अंधकार में कितने ही लोग जिन्दगी गुजारने को मजबूर हैं। क्या इनके जीवन में प्रकाश की कोई किरण आ सकती है? इस प्रश्न का उत्तर निर्संदेह हैं, इनमें से काफी लोग मरणोपरांत नेत्रदान से लाभ उठा सकते हैं। आंखों के स्वच्छ पटल अथवा कार्निया में सफेदी आने से होने वाले अंधत्व के उपचार के लिए नेत्र दान से प्राप्त कॉर्निया मिलना आवश्यक है

नेत्रदान वह प्रक्रिया है जिसमें मानव नेत्रदान द्वारा दान–दाताओं से उनकी मृत्यु के बाद ग्रहण किये जाते हैं। नेत्रदान से प्राप्त इन आँखों की स्वच्छ कार्निया को ऐसे दृष्टिहीन व्यक्ति जिनका जीवन कार्निया में सफेदी आ जाने से अंधकारमय हो गया है, को प्रत्यारोपित कर नेत्र ज्योति लौटायी जा सकती है।

पहले शिक्षा का पर्याप्त प्रसार न होने से लोगों में तरह–तरह के अंधविश्वास तथा भ्रांतियाँ थी। जैसे कुछ लोग यह मानते हैं कि नेत्रदान देने से व्यक्ति अगले जन्म में जन्मांध होगा, तो कुछ लोग भावनात्मक कारणों से मृत शरीर के साथ चीर–फाड़ उचित नहीं मानते तथा नेत्र निकालने की अनुमति नहीं प्रदान करते हैं। तीसरा कारण है – जागरूकता व सामाजिक जिम्मेदारी का अभाव।

कार्निया प्रत्यारोपण के ऑपरेशन में अच्छे परिणाम के लिए आवश्यक है कि दान देने वाले व्यक्ति की आँखें मृत्यु के उपरांत जल्द से जल्द निकाल ली जाये तथा प्रत्यारोपण का ऑपरेशन भी यथासंभव शीघ्र सम्पन्न हो सके। फिर भी छः घंटों के अंदर दानदाता के शरीर से नेत्र निकाल लिये जाने चाहिए एवं 24 घंटों के अंदर प्रत्यारोपित हो जाने पर अच्छे परिणाम आते हैं।

कई बार दान की घोषणा के बाद भी दानकर्ता के रिश्तेदार इस आशंका से अस्पताल में खबर नहीं करते कि मृत शरीर की चीर–फाड़ कर दुर्दशा क्यों की जावे। लेकिन इस मानसिकता को बदलना आवश्यक है जो निरंतर प्रचार व जन जागरण से ही संभव है।

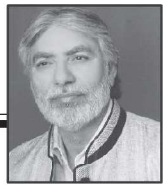
हम अधिक से अधिक लोगों को नेत्रदान के लिए प्रेरित करें, ताकि दृष्टिहीनों के जीवन में प्रकाश की किरणें जगमगाने लगे। डॉ. मिश्र फाउंडेशन इस सम्बंध में जागरूकता अभियान के माध्यम से नेत्रदान के प्रति जागरूकता बढ़ाने का कार्य कर रहा है। लोगों को इस सम्बंध में पम्पलेट वितरित करने, परामर्श देने,तथा नेत्रदान के लिए फार्म भरवाने का कार्य किया जा रहा है।

कार्यक्रम में डॉ. वी पी पाठक, आर के चौबे ने भी संबोधित किया। शिविर में 300 से अधिक मरीजों का निशुल्क स्वास्थ्य परीक्षण, नेत्र परीक्षण किया गया। नेत्र दान के फॉर्म भरवाए गए एवम पंपलेट वितरित किए गए।

शिक्षित व्यक्ति भाग्य का अस्तित्व स्वीकार नहीं कर सकता।

– रवीन्द्रनाथ टैगोर

जनता को सस्ता और सुलभ न्याय देने के अनिवार्य तौर तरीकों की महती जरूरत



–मुनीश त्यागी

आज हम जनता को सस्ते और सुलभ न्याय के मार्ग में बहुत सारी बाधायें देख रहे हैं, बहुत सारी निराशाएं देख रहे हैं, बहुत सारी बेरुखी और खामियां देख रहे हैं, सरकार की हद दर्जे की बेरुखी, लापरवाही और हद दर्जे की असंवेदनशीलता देख रहे हैं। भारत के संविधान में भारत की जनता को सस्ता, सुलभ और सुगम न्याय देने का वादा किया गया है। आजादी के 77 साल बाद भी यह संवैधानिक गारंटी झूठी साबित हो रही है। अधिकांश गरीब वादकारियों को सस्ते और सुलभ न्याय से विश्वास उठता जा रहा है।

'टाइम्स ओफ इंडिया' की लेटेस्ट रिपोर्ट के अनुसार भारत में इस समय पांच करोड़ से अधिक मुकदमें भारत के विभिन्न न्यायालयों में लंबित हैं और मुकद्मों का बहुत बड़ा पहाड़ देश के सामने खड़ा हो गया है। निचली अदालतों में यह संख्या लगभग 4 करोड़ 50 लाख और विभिन्न उच्च न्यायालयों में 59 लाख मुकदमें लंबित हैं, सर्वोच्च न्यायालय में 83 हजार से ज्यादा मुकदमें लंबित हैं। विभिन्न उच्च न्यायालयों में 42 लाख अपराधिक मुकदमें और 16 लाख दीवानी मुकदमे लंबित हैं, जिनके शीघ्र निस्तारण के आसार नजर नहीं आ रहे हैं।

भारत के कई मुख्य न्यायाधीश और कानून मंत्री अनेकों बार यह जानकारी दे चुके हैं। उन्होंने अनेकों संमेलनों में बताया है कि भारत में इस वर्ष इस समय पांच करोड़ से ज्यादा मुकदमे लंबित हैं। आंकड़ों के अनुसार सरकारें, भारत में सबसे बड़ी वादकारी और मुकदमेबाज पक्षकार है। उन्होंने यह सच्चाई भी उजागर की है कि 50 प्रतिशत लंबित मामलों में सरकारें पक्षकार हैं। भारत में हालात इतने खराब हो गये हैं कि कार्यपालिका और विधान–पालिका की विभिन्न शाखाओं के पूरी क्षमता और प्रतिबद्धता के साथ काम न करने से भी लंबित मामलों का अंबार लग गया है।

आज भारतीयों को प्रमुख समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जैसे लंबित मामलों की लगातार बढ़ती संख्या, वर्षों से खाली पड़े जजों के हजारों पद, घटते न्यायाधीश, विशेषज्ञ न्यायाधीशों की नियुक्तियां न होना, मुकदमों के अनुपात में अदालतों की कमी, मुकदमों के अनुपात में न्यायधीशों, स्टैनों, न्यायिक कर्मचारियों और अदालतों के बुनियादी ढांचे की अनेक कमियां और खामियां मौजूद हैं। आधुनिक सुविधाजनक न्यायालय नहीं है, मुकदमों के अनुपात में जज और कर्मचारी, स्टेनो आदि नहीं है। ये पद पिछले पंद्रह बीस सालों से खाली पड़े हुए हैं। वकीलों द्वारा लगातार मांग और आंदोलन करने के बावजूद भी केन्द्र और राज्य सरकारें, इन बुनियादी न्यायिक मांगों को नजर अंदाज और अनसुनी करती चली आ रही हैं। हालात इतने बिगड़ चुके हैं कि पर्याप्त संख्या में सरकारी न्यायिक कर्मचारियों के अभाव में बड़ी संख्या में ''प्राइवेट न्याय कर्मी'' यानि अंजीर रखे जा रहे हैं।

दरअसल सस्ता, सुलभ और सुगम न्याय सरकार के एजेंडे में नहीं है। हमारी न्यायपालिका का बजट राष्ट्रीय जीडीपी का केवल .02 प्रतिशत है जो वैश्विक स्टैंडर्ड के हिसाब से जीडीपी का 3 परसेंट होना चाहिए। यहीं पर हमारा यह भी कहना है कि जब तक जनता की भाषा में न्याय प्रक्रिया नहीं अपनाई जाती और निर्णय नहीं दिए जाते, तब तक वादकारी जनता को सस्ता, सुलभ और असली न्याय नहीं मिल सकता। 30 अगस्त 2024 के 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के अनुसार, इस समय देश में पांच करोड़ से ज्यादा मुकदमें लंबित हैं जो शीघ्र न्याय की बाट जोह रहे हैं।

मुकदमों का जल्दी न्यायिक निस्तारण न होने का एक कारण यह भी है कि बहुत सारे कानूनों को साफ, स्पष्ट और सरल रूप से और जनता की भलाई को ध्यान में रखकर नहीं बनाया गया है, जिस कारण मुकद्मों के अनावश्यक भार से न्यायपालिका चरमरा गई है जो जनतंत्र की सेहत के लिए सही नहीं है। जनता को समय से न्याय न मिलने और मुकद्मों के लगातार लंबित होने के लिए कार्यपालिका भी बहुत हद तक जिम्मेदार है। उपरोक्त परिस्थितियों के अनुसार जनता को सस्ता, सुलभ और सुगम न्याय न मिलने की न्यायपालिका जिम्मेदार नहीं है बल्कि इसके लिए जनता को समय से सस्ता और सुलभ न्याय देने में सरकार की बेरुखी सबसे ज्यादा जिम्मेदार है।

हमारे देश में 10 लाख जनसंखया पर मात्र 20 न्यायाधीश हैं जो बेहद कम हैं। राष्ट्रीय कानून आयोग की सिफारिशों के अनुसार 10 लाख जनसंखया पर कम से कम 50 न्यायाधीश होने चाहिए। ऐसी ही सिफारिशें भारत के कई मुख्य न्यायाधीश

भी कर चुके हैं, मगर सरकार के कान पर जूं तक नहीं रेंगती। वह इन सिफारिशों को लगातार अनदेखा और अनसुना करती आ रही है। पश्चिमी देशों में यह संख्या 10 लाख जनसंख्या पर 110 न्यायाधीश हैं, मगर हमारी सरकारें इन सिफारिशों और तथ्यों पर ध्यान देने को तैयार नहीं है। अगर हमारे देश में तहसीलदार, पंचायतें, दीवानी संस्थाएं, रिवेन्यू अधिकारी और उप श्रमायुक्त और सहायक श्रमायुक्त प्रतिबद्धता, संवेदनशीलता और कानून के हिसाब से काम करें तो मुकदमों का बोझ काफी हद तक कम किया जा सकता है।

इसी के साथ यदि पुलिस विवेचना सही, वास्तविक और कानूनी हो और गैर कानूनी गिरफतारियां नहीं की जाती हैं और श्रम कानूनों को सही और कानूनी तरीके से लागू किया जाता है और तमाम मजदूरों को श्रम कानूनों की सुविधाएं उपलब्ध कराई जायें तो बहुत से वाद न्यायालय तक नहीं पहुंच पाएंगे। इसी के साथ–साथ विधान–पालिका को कानूनों को जनता का कल्याण ध्यान में रखकर बनाना पड़ेगा और उनमें जरूरी संशोधन करने होंगे। इससे भी मुकदमों में कमी आएगी।

जनता को सस्ता, सुलभ और सुगम न्याय मिलने के लिए हमारे देश की कार्यपालिका और विधान–पालिका के विभिन्न विभागों द्वारा समयबद्ध कार्यवाहियां न किया जाना और उनका लापरवाहीपूर्ण और गैरजिम्मेदाराना व्यवहार भी विशेष रूप से जिम्मेदार है। उनको पीड़ित वादकारियों से कोई प्यार, मोहब्बत, लगाव और भाईचारा नहीं है, जनता से कोई हमदर्दी नहीं है। इन दिनों भ्रष्टाचार भी एक बड़ी समस्या बनकर सामने आ रही है, इसलिए मुकदमें लंबे समय तक लमबित पड़े रहते हैं और जनता को समय से न्याय नहीं मिल पाता। जनता को सस्ता, सुलभ और सुगम न्याय न मिलने के लिए केवल और केवल भारत की केन्द्र और राज्य सरकारें जिंमेदार हैं।

पिछले काफी समय से हम देखते चले आ रहे हैं कि केन्द्र सरकार के कानून मंत्री सिर्फ आंक्ड़े पेश कर रहे हैं। वे जनता को सस्ता सुलभ न्याय कैसे मिले? इस तरह का कोई खाका पेश नहीं कर रहे हैं और अब तो यह लगने लगा है कि केन्द्र और अधिकांश राज्य सरकारों की जनता को सस्ता और सुलभ न्याय देने क ी कोई योजना और मंशा नहीं है। हम यहां पर जोर देकर कहेंगे कि जनता को सस्ता और सुलभ न्याय देने के लिए भारत की जनता और अधिकांश पार्टियों को सरकार पर दबाव डालना होगा कि वह अदालतों में पेंडिंग 5 करोड़ से ज्यादा मुकदमों का समय से न्यायिक निस्तारण करने के लिए एक समय सीमाबध्द कार्यक्रम जनता के सामने पेश करें। इसके बिना जनता को सस्ता और सुलभ न्याय नहीं मिल सकता।

हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि दुनिया में सबसे बड़ी मुकदमेबाज भारत और राज्यों की सरकारें हैं और कोई नहीं। जब तक ये सरकारें समयबद्ध तरीके से, सस्ते और सुलभ न्याय को एजेंड़े में रखकर काम नहीं करेंगी, तब तक भारत की जनता को सस्ता, सुलभ, असली और वास्तविक न्याय नहीं मिल सकता और लगातार बढ़ते जा रहे मुकद्मों का यह पहाड़ ओर ऊँचा होता जाएगा। सरकार की न्याय देने की मंसा के बिना मुकदमों का यह लगातार बढ़ता जा रहा पहाड़ नहीं हटाया जा सकता।

यहीं पर यह बताना जरूरी है कि हमारे देश की अधिकांश जनता, जन प्रतिनिधियों, वकीलों और सरकार को यह जानकारी ही नहीं है कि मुकदमों के इस बढ़ते संध्या को कैसे रोका जाए, कैसे इनका शीघ्र निस्तारण किया जाये और जनता को कैसे सस्ता और सुलभ न्याय दिया जाए। वादकारियों को सस्ता, सुलभ और सुगम न्याय देने के लिए हम निमनलिखित सुझाव इस देश की जनता, जनप्रतिनिधियों, केन्द्र और राज्य सरकारों के सामने रख रहे हैं।

हमारा यह भी कहना है कि सरकार जनता को सस्ता और सुलभ न्याय देने के लिए कोई कार्यवाही नहीं कर रही है, उसे इसकी कोई चिन्ता ही नहीं है और सस्ता और सुलभ न्याय उसके एजेंडे में शामिल ही नहीं है। इन कष्टकारी और अन्यायी परिस्थितियों में हमारे सुझाव इस प्रकार हैं:–

1. मुकदमों के अनुपात में सारे देश में नयी अदालतों का शीघ्रता के साथ निर्माण किया जाए।

2. मुकदमों के अनुपात में पूरे देश में हजारों/लाखों की संख्या में विशेष न्यायाधीश नियुक्त किए जाएं।

3. हर एक न्यायालय में समय से स्टेनों की नियुक्तियां की जाएं।

4. लमबित मुकदमों के अनुपात में न्यायालय में न्यायिक कर्मचारियों की नियुक्तियां की जाए।

5. रेवेन्यू कोर्टस, लेबर कोर्टस, इंडस्ट्रियल ट्रिब्यूनल्स और अन्य समस्त अदालतों और सरकारी संस्थाओं में संबंधित कानूनों के एक्सपर्ट जजिज की नियुक्ति की जाए, ताकि मुकदमों का निर्धारित समय सीमा में न्यायिक निस्तारण हो सके।

6. वकीलों के संगठनों और बार काउंसिल आफ इंडिया, सर्वोच्च न्यायालय में एक रिट याचिका **शेष पृष्ठ 30 पर**

मार्क्स की 'पूँजी' पर आधारित पाठ

वस्तु का मूल्य उस वस्तु के बाहर क्यों होता है?

रंगनायकम्मा



कोई व्यक्ति किसी वस्तु को बनाकर अपनी ही जरूरत के लिए इस्तेमाल करे, तो हम उसका मूल्य नहीं जान पाते हैं। वस्तु का मूल्य हम देख नहीं पाते। वह व्यक्ति उस वस्तु को मुफत में दूसरों को दे दे, तो भी उसके मूल्य का सवाल नहीं उठता।

यहाँ विनियम हुआ है घड़े और जूतों की जोड़ी के बीच। कुम्हार ने जब घड़ा दिया तब उसे जूते मिले। क्यों मिले उसे ये जूते? जिसको घड़ा मिला उसे घड़े का मूल्य चुकाना पड़ा, इसलिए उसने उतने ही मूल्य के जूते दिये। घड़ा चूँकि विनियम में चला गया, इसीलिए उसका मूल्य वापिस चला आया। अब घड़े का मूल्य जूतों के रूप में दिखता है। हम जूतों को देखें तो यह घड़े का मूल्य देखने जैसा हो जाता है।

इसी तरह जूतों को लें, तो जूतों का मूल्य घड़े के रूप में दिखता है। जूतों का मूल्य घड़ा!

घड़े का मूल्य जूतों के रूप में होने का मतलब यही है कि घड़े का मूल्य घड़े के शरीर के अंदर मौजूद नहीं होता। वह घड़े के शरीर के बाहर होता है। इसी तरह जूतों का मूल्य घड़े के रूप में होने का मतलब यह है कि जूतों का मूल्य जूतों के शरीर के अन्दर नहीं होता। वह शरीर के बाहर होता है। दिख पाने के लिए ही किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु के शरीर के बाहर किसी ओर वस्तु के रुप में होता है। जबकि उपयोग मूल्य वस्तु के बाहर नहीं, अन्दर होता है। है न?

मतलब यह है कि किसी वस्तु का मूल्य देखने के लिए किसी ओर वस्तु को देखना होता है।

घड़े का मूल्य घड़े के बाहर होता है।

घड़ा = जूतों की जोड़ी

किसी वस्तु का मूल्य उसके शरीर के भीतर के बजाय बाहर क्यों होता है? मूल्य के संदर्भ में सबसे पहले यही सवाल उठना चाहिए। इस सवाल का जवाब हम बाद में देखेंगे।

घड़े का मूल्य क्या हमेशा ही जूतों के रूप में जाहिर होता है?

यह तो हम देख चुके हैं न, कि घड़े का मूल्य जूतों के रूप में होता है? क्या हमेशा ही घड़े का मूल्य जूतों के रूप में होगा? नहीं। घड़े का विनियम हमेशा जूतों के साथ नहीं न होगा? फिलहाल घड़े का विनियम जूतों के साथ हुआ है। इसीलिए अब घड़े का मूल्य जूतों के रूप में है। इसी घड़े का अगर जूतों के अलावा किसी ओर वस्तु से विनियम हुआ होता, तो उसका मूल्य उस दूसरी वस्तु के रूप में होता।

श्याम का परिवार एक-दो नहीं, बहुत सारे घड़े बनाता है। परिवार के लोग अपनी जरूरत के लिए इनमें से कुछ ही घड़ों का इस्तेमाल करते हैं। बाकी घड़ों को वे विनियम के रूप में देते हैं और पाते हैं तरह-तरह की वस्तुएं। हर घड़े के विनियम से जूतों की जोड़ी ही नहीं मिलती। एक घड़े को देकर जूतों की जोड़ी मिलती हो, तो किसी ओर घड़े को देकर धान मिलता होगा। तीसरे घड़े को देकर अनाज छटकने वाला सूप मिलता होगा। चौथे घड़े के बदले वे अपने कपड़े धुलवा लेते होंगे। किसी घड़े के बदलें उन्हें जो भी वस्तु मिलती हो वही उस घड़े का मूल्य होता है। ली जाने वाली वस्तु का रूप ही इस वस्तु का मूल्य होगा। एक घड़े का मूल्य जूतों के रूप में, दूसरे घड़े का मूल्य धान के रूप में और तीसरे घड़े का मूल्य अनाज छटकने वाले सूप के रूप में। इन घड़ों का मूल्य इतने अलग-अलग रूपों में होता है। कुम्हार अपने एक-एक घड़े का उन्हीं वस्तुओं के साथ विनिमय करता जाता है जिनकी उसे जरूरत हो।

कुम्हारों ने अपने घड़े दे दिये हैं और तरह-तरह की वस्तुएं पा ली हैं। हर विनियम में घड़े का मूल्य घड़े के बाहर ही होता है।

मान लेते हैं कि एक ही आकार और प्रकार के 10 घड़े हों। इन सभी में समान किस्म का श्रम लगा है। इनका मूल्य समान है। लेकिन दस में से हर घड़े का विनियम अलग-अलग वस्तु के साथ हो जाने के कारण हर घड़े का अपने विनियम का अलग-अलग मूल्य-रूप होता है।

एक ओर वस्तु 'धान' को लेकर इसी बात को परखें। धान उगाने वाला अपने कुछ धान जूतों की जोड़ी के बदले देता है, तो कुछ धान गुड़ के बदले देता है। सारा धान एक ही किस्म का हो, तो भी विनिमय अलग-अलग वस्तु के साथ हो रहा है। इसीलिए मूल्य अलग-अलग रूपों में होता है।

घड़े का विनिमय चाहे जूतों, गुड़, धान या किसी भी वस्तु के रूप में हो, सभी घड़ों का मूल्य किसी दूसरी वस्तु रूप में ही होता है। हर सूरत में मूल्य घड़े के शरीर के बाहर ही होता है। उपयोग मूल्य इस तरह बाहर नहीं होता। वह वस्तु के शरीर के भीतर होता है। यह जानने के लिए कि घड़ा बड़ा है या छोटा, घड़े को देखने की जरूरत होती है। आम मीठा है या खट्टा, यह जानने के लिए आम को चखा जाता है। लेकिन विनिमय-मूल्य को पता लगाने के लिए वस्तु की ओर नहीं, बल्कि बाहर देखना होता है। इससे हमें यह समझना होगा कि 'उपयोग-मूल्य' स्वाभाविक गुण है और होते 'विनिमय-मूल्य' अस्वाभाविक गुण है।

शारीरिक गुण ही स्वाभाविक और चाहने योग्य होते हैं। जबकि वह गुण जो शरीर से जुड़ा न हो, बाह्य हो, अस्वाभाविक और अनचाहा ही होगा।

इन्हीं बातों को सबसे पहले समझने की जरूरत है।

सवाल और जवाब

1. श्याम ने 4 घड़े बना लिये हैं। सभी एक ही तरह के हैं। उसने इन घड़ों को अलग-अलग लोगों को दिया है और उनसे अलग-अलग वस्तु ली है। क्यों सभी घड़ों का मूल्य समान होगा? क्या इन घड़ों का 'मूल्य-रूप' समान होगा?

जवाब : चारों घड़े एक ही तरह के हैं। सभी का श्रम-समय एक ही है। इसीलिए इनका 'मूल्य' समान होगा। मगर इन घड़ों का अलग-अलग वस्तु के साथ विनिमय हो जाने के कारण मूल्य के रूप अलग-अलग हैं। एक घड़े का मूल्य अनाज के रूप में है, तो दूसरे घड़े का जूतों के रूप में। चारों घड़ों का मूल्य समान होने के बावजूद वापस लौट आने वाला मूल्य जिन रूपों में दिख रहा है वे रूप अलग-अलग है।

2. किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु से हटकर और बाहर क्यों होता है?

जवाब : मूल्य अगर स्वाभाविक गुण होता, तो वह भी वस्तु के शरीर में बसा होता। जैसे 'रंग' और 'वजन'। स्वाभाविक गुण नहीं होने के ही कारण वह वस्तु के बाहर होता है।

3. मूल्य का मतलब श्रम ही है न? फिर 'श्रम' अस्वाभाविक कैसे हो सकता है?

जवाब: इस सवाल का जवाब देने के लिए अभी हमें 3-4 पाठ ओर पढ़ने होंगे। तब तक हमें इन्तजार करना होगा।

मूल्य अस्वाभाविक होता है!

किसी वस्तु के जो गुण स्वाभाविक होते हैं वे हैं:-(1) उसे बनाया जाना और (2) उसका इस्तेमाल होना। बस, सिर्फ यही दो। वस्तु को अगर बनाया न जाये, तो उसका कोई अस्तित्व ही नहीं होगा। हम कोई वस्तु चाहते हों, तो उसे बनाना तो होगा ही। यह स्वाभाविक बात है। बनी हुई वस्तुओं का अगर इस्तेमाल न हो, तो कोई जरूरतें पूरी नहीं हो पायेंगी। जरूरतों की पूर्ति के लिए यह जरूरी है कि वस्तुओं का इस्तेमाल हो। वस्तुओं का इस्तेमाल होना भी स्वाभाविक बात है। ये दो पहलू इन्सान के जीवन के लिए निहायत जरूरी हैं। इन पहलुओं को हम आसानी से समझ सकते हैं।

लेकिन क्या 'विनिमय' भी उतने ही अनिवार्य हैं? उतने ही स्वाभाविक? विनिमय न हों, तो क्या वस्तुओं को बनाना और इस्तेमाल करना संभव नहीं होगा?

पहले, आदिम अवस्था के दौर में, लोग वस्तुओं का कोई विनिमय नहीं करते थे, मगर वस्तुओं को बनाते थे और इस्तेमाल करके जी लेते ते। है न? वह कैसे संभव था?

कमीज बनाने के लिए कपड़ा, सुई और धागा होना चाहिए। ठीक? इनमें से कोई एक भी चीज न हो, तो कमीज का बनना रुक जाता है। लेकिन क्या उसे कपड़े, सूई और धागे के विनिमय के जरिये ही हासिल करना जरूरी है। अगर ये विनिमय के बिना हासिल हों, तो क्या उनसे कमीज नहीं बन पायेगी? इसी तरह अगर बनी कमीज का विनिमय न हो, तो क्या उसे पहना नहीं जा सकेगा? क्या वह हमारे शरीर पर चढ़ने से इनकार कर देगी?

तात्पर्य यह है कि वस्तुओं के विनिमय व उनके बनने और इस्तेमाल होने के साथ कोई ताल्लुक नहीं होता। विनिमय कोई स्वाभाविक जरूरत नहीं। कोई विनिमय न हो, तो भी वस्तुएं बन सकती हैं और इस्तेमाल की जा सकती हैं। इसीलिए विनिमय अस्वाभाविक परिघटना होते हैं। यह मसला समझ में आना कठिन है। फिर भी यह समझना बेहद जरूरी है कि 'विनिमय अस्वाभाविक होते हैं।' विनिमय अस्वाभाविक होते हैं, इसीलिए उनसे पैदा होने वाला 'विनिमय-मूल्य' अस्वाभाविक होता है। मूल्य अस्वाभाविक होता है, इसीलिए तो वह वस्तु के बाहर पाया जाता है।

इस बात को लेकर मन में अनेक शंकाएँ उठ सकती हैं।

पहली शंका: मूल्य अस्वाभाविक कैसे हो सकता है? मूल्य का मतलब श्रम नहीं है क्या? चीजें तो श्रम के बिना नहीं

न बन सकतीं? ऐसे में श्रम अस्वाभाविक कैसे हो सकता है?

जवाब : यह सच हैं कि चीजों को बनाने के लिए श्रम निहायत जरूरी है। कमीज बनाने के लिए दर्जी का श्रम जरूरी है। कुर्सी बनाने के लिए बढ़ई का श्रम जरूरी है। इस तरह भिन्न-भिन्न प्रकार के श्रम के बिना चीजें नहीं बन सकतीं। श्रम न हो, तो कुदरती पदार्शों को चीजों में बदला नहीं जा सकता। इसीलिए चीजों को बनाने में लगने वाले तमाम किस्म के श्रम स्वाभाविक होते हैं। मगर 'अस्वाभाविकता' के पहलू का ताल्लुक स्वाभाविक श्रम से नहीं होता। उसका ताल्लुक होता है स्वाभाविक श्रम के 'मूल्य' में रूपान्तरण से। स्वाभाविक श्रम के 'मूल्य' में रूपान्तरित होने की क्रिया बेहद अस्वाभाविक होती है। यह अस्वाभाविक रूप से रूपान्तरित होने वाला श्रम ही 'मूल्य' बन जाता है। इसीलिए मूल्य अस्वाभाविक होता है।

(इस मसले को हम तब तक नहीं समझ पायेंगे जब तक हम यह न जान पायें कि श्रम मूल्य में किस तरह रूपान्तरित होता है। इस बात को हम कुछ समय बाद दूसरे किसी पाठ में ज्यादा विस्तार से देखेंगे।)

दर्जी का श्रम स्वाभाविक श्रम है। इसका मूल्य में रूपान्तरण अस्वाभाविक है। बढ़ई का श्रम स्वाभाविक श्रम है। उसका मूल्य में रूपान्तरण अस्वाभाविक है। विनिमय इसीलिए अस्वाभाविक होते हैं कि इनके कारण श्रम में अस्वाभाविकता आ जाती है। विनिमय-मूल्य अस्वाभाविक होता है।

दूसरी शंका: विनिमय अस्वाभाविक कैसे हो सकते हैं? कोई एक व्यक्ति दो या तीन से ज्यादा वस्तुएं तो नहीं न बना पाता? मगर इनसानों को जरूरत तो कई तरह की वस्तुओं की होती है न? विनिमय-प्रणाली न हो, तो उन्हें दूसरी-दूसरी तरह की वस्तुएं कैसे मिल सकती हैं? फिर इन्सानों की जरूरतें कैसे पूरी हो सकती हैं? विनिमय अस्वाभाविक कैसे हो सकते हैं?

जवाब : ये सभी सवाल बड़े अच्छे और चिन्तनशील हैं। सवाल उठाना चिन्तन-मनन करने का लक्षण है। और इन सभी सवालों के सही-सही जवाब हैं भी। मगर सभी को हम अभी समझ नहीं पायेंगे। अभी हमें कुछ ओर पाठ पढ़ने होंगे। यह सही है कि कोई व्यक्ति अपनी जरूरत की सारी वस्तुएँ नहीं बना सकता। यह भी सही है कि इनसानों की जरूरतें विनिमय के कारण पूरी हो पाती हैं। लेकिन यह सब इसलिए होता है कि इनसानों के आपसी संबंध 'खास तरीके' के हैं। इन संबंधों में एक किस्म की अस्वाभाविकता होती है। विनिमय इसी अस्वाभाविकता के कारण जरूरी हो चले हैं। ऐसी अस्वाभाविकता न होती, तो विनिमय की कोई जरूरत ही नहीं होती। जब विनिमय की कोई जरूरत नहीं रह जायेगी तब ऐसी कोई परिस्थिति होगी ही नहीं कि स्वाभाविक श्रम 'मूल्य' में रूपान्तरित हो। इस पाठ में हम अभी यह नहीं समझ पायेंगे कि यह सब कैसे संभव होगा।

विनिमय अस्वाभाविक क्यों होते हैं? मूल्य अस्वाभाविक क्यों होते हैं? जिस किसी के मन में इस तरह की शंकाएँ उठती हों, उनके मन में विनिमय के संबंध में कुछ ओर शंकाएँ भी उठती होंगी। ये कि (1) वस्तु का मूल्य उसके शरीर के बाहर क्यों होता है, अन्दर क्यों नहीं? और (2) किसी वस्तु का मूल्य अगर स्वाभाविक गुण होता, तो क्या उसे सतत दिख जाना नहीं चाहिए था? मूल्य केवल तभी क्यों दिखता है जब विनिमय होता हो और जब विनिमय न हो रहा हो तब वह क्यों नहीं दिखता? ऐसी शंकाएँ भी उठनी चाहिए।

जब से हमने 'पैसा क्या होता है?' इस सवाल पर सोचना शुरू किया तब से अभी तक हमने पैसे को छुआ तक नहीं है। थोड़ा-थोड़ा करके हम बहुत जल्द 'पैसों' के पास पहुँचने वाले हैं।

जिंदा बाप कोई न पूजे,
मरे के बाद पुजवाया,
मुट्ठी भर चावल लेके,
कौवे को बाप बनाया। – कबीर

अगर दान-दक्षिणा और पूजापाठ से खुश होकर ईश्वर किसी के पापों को क्षमा कर देता हैं तो उस से बड़ा भ्रष्टाचारीऔर रिश्वतखोर कोई नहीं है।

-ज्योतिबा फुले

पृष्ठ 27 का शेष दायर करें जिसमें मांग की जाए कि मुकदमों के अनुपात में केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों को आदेश दिया जाए कि मुकदमों के अनुपात में नये न्यायालय, विशेष न्यायिक अधिकारी/जज, स्टेनों और सरकारी कर्मचारी नियुक्त किए जाएं ताकि जनता को समय से सस्ता, सुलभ और सुगम न्याय प्राप्त हो सके। **98371-51641**

वैज्ञानिक चेतना परिचर्चा रिपोर्ट

डी एन एस आनंद

वैज्ञानिक चेतना परिचर्चा की 9वीं कड़ी में वक्ताओं ने हिन्दी प्रदेशों में तर्कशील आंदोलन की दशा-दिशा पर की व्यापक चर्चा

जन जन तक विज्ञान पहुंचाने एवं लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा लोकतांत्रिक चेतना के विकास एवं विस्तार के लिए प्रतिबद्ध साइंस फॉर सोसायटी, झारखंड द्वारा वैज्ञानिक चेतना अभियान के तहत जारी ऑनलाइन परिचर्चा राष्ट्रीय युवा-संवाद की 9वीं कड़ी का आयोजन 13 अक्टूबर रविवार को संपन्न हो गया। उल्लेखनीय है कि 21वीं सदी के मौजूदा दौर में भी जब विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास की गति बहुत तेज है। वैश्वीकरण, उदारीकरण एवं बाजारीकरण ने दुनिया की तस्वीर बदल कर रख दी है। भारत ने चंद्र मिशन, गगनयान जैसे तकनीकी मिशन की सफलता के साथ विश्व में अपनी खास पहचान बनाई है वहीं यहां पर अब भी दकियानूसी सोच, कुरीति, पाखंड, रूढ़िवादी परम्पराएं , मूढ़ मान्यताएं, अंधश्रद्धा, अंधविश्वास का बोलबाला है तथा सत्ता, व्यवस्था, बाजारवाद एवं धर्म के ठेकेदारों द्वारा उसे खुलकर बढ़ावा दिया जा रहा है। मौजूदा दौर में, जब अवैज्ञानिक सोच, धर्मांधता, संकीर्णता, असहिष्णुता, नफरत और हिंसा को शीर्ष स्तर पर प्रोत्साहित किया जा रहा हो स्थिति की भयावहता को आसानी से समझा जा सकता है। ऐसे परिदृश्य में लोगों में वैज्ञानिक चेतना के विकास एवं विस्तार के लिए ऑल इंडिया पीपुल्स साइंस नेटवर्क के आह्वान पर साइंस फॉर सोसायटी, झारखंड ने खास पहल कर जन संवाद को आगे बढ़ाया तथा वैज्ञानिक चेतना पर ऑनलाइन राष्ट्रीय परिचर्चा की श्रृंखला की शुरूआत की। इसके तहत अब तक वैज्ञानिक चेतना से संबद्ध विभिन्न प्रमुख विषयों पर ऑनलाइन परिचर्चा की 8 कड़ियां आयोजित की जा चुकी हैं तथा यह उसकी 9वीं कड़ी थी। आयोजन में जनवादी लेखक संघ झारखंड की भी सहभागिता रही है। परिचर्चा का विषय था-**संविधान का 75वां साल और हिंदी प्रदेशों में तर्कशील आंदोलन का सवाल।**

कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ अली इमाम खां (प्रमुख शिक्षा विद एवं विज्ञान संचारक) अध्यक्ष, साइंस फॉर सोसायटी झारखंड ने की जबकि समन्वयन एवं संचालन डी एन एस आनंद, महासचिव साइंस फॉर सोसायटी झारखंड ने किया। वक्ता पैनल में शामिल थे- डॉ. महेंद्र प्रताप सिंह जनवादी लेखक संघ वाराणसी उत्तरप्रदेश, विश्वास मेश्राम, अध्यक्ष, छत्तीसगढ़ विज्ञान सभा, जसवंत सिंह मोहाली, तर्कशील सोसायटी पंजाब, गुरमीत अम्बाला, तर्कशील सोसायटी हरियाणा तथा इ. सुनील सिंह विज्ञान संचारक पटना, बिहार। हालांकि अपरिहार्य कारणों से विश्वास मेश्राम जी की भागीदारी मुमकिन नहीं हो पाई।

साइंस फॉर सोसायटी झारखंड के महासचिव डी एन एस आनंद ने विषय प्रवेश करते हुए वैज्ञानिक चेतना अभियान के तहत जारी इस राष्ट्रीय परिचर्चा की खास पृष्ठभूमि की चर्चा की। उन्होंने सभी प्रतिभागियों का स्वागत तथा वक्ता पैनल के सदस्यों का परिचय कराते हुए कहा कि यह भारतीय संविधान का 75वां वर्ष है तथा साइंस फॉर सोसायटी झारखंड इसे वैज्ञानिक चेतना वर्ष के रूप में मना रही है। उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 51ए (एच) की चर्चा करते हुए कहा कि संविधान ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास को नागरिकों का मौलिक कर्तव्य निरूपित किया है पर आजादी के 75 वर्षों के बाद भी समाज में अवैज्ञानिक सोच, अंधश्रद्धा, अंधविश्वास, कुरीति एवं पाखंड का बोलबाला जारी है तथा इस मामले में देश के हिन्दी प्रदेशों की स्थिति ओर भी बदतर है। ऐसे में समाज को इससे मुक्त कराने के लिए और अधिक सामूहिक प्रयास करने एवं वैचारिक संघर्ष चलाने की जरूरत है ताकि तर्कशील, वैज्ञानिक दृष्टिकोण संपन्न, सभी प्रकार के भेदभाव, शोषण उत्पीड़न से मुक्त समतामूलक समाज एवं देश का निर्माण किया जा सके।

गुरमीत अम्बाला (हरियाणा)

चर्चा की शुरुआत करते हुए पिछले करीब तीन दशक से तर्कशील आंदोलन से संबद्ध एवं ''तर्कशील पथ'' हिन्दी पत्रिका के संपादन से जुड़े, तर्कशील सोसायटी हरियाणा के गुरमीत अम्बाला ने तर्कशील आंदोलन पर राष्ट्रीय परिचर्चा के इस प्रयास को बेहद सराहनीय बताया। भारतीय संविधान में मौजूद इसके प्रावधानों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि देश में आजादी के पहले ही यह विषय सामने आ गया था, जिसे आजादी के बाद तत्कालीन नेताओं ने आगे बढ़ाया। उन्होंने बताया कि 1986 से हरियाणा में इस दिशा में काम शुरू हुआ। लेखन, प्रकाशन के साथ ही तर्कशील मेला, सेमिनार, स्कूलों में मैजिक का प्रदर्शन, तथाकथित 'चमत्कारी' ढोंगी बाबाओं का

पर्दाफाश, उन्हें खुला चैलेंज समेत विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया गया जिसके जरिए तर्कशील आंदोलन का संदेश लाखों लोगों तक पहुंचा। हरियाणा में जादू-टोना, झाड़-फूंक के विरुद्ध जारी मुहिम में प्रभावित लोगों के मानसिक स्वास्थ्य पर भी ध्यान दिया जाता है। लोगों के इससे संबंधित सवालों के जबाव भी दिए जाते हैं। साथ ही लोगों को यह बताया जाता है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास को संविधान ने सभी नागरिकों का मौलिक कर्तव्य निरूपित किया है। इसलिए मिल जुलकर तर्कशील अभियान को आगे बढ़ाया जाना चाहिए।

जसवंत सिंह मोहाली, पंजाब

परिचर्चा के दूसरे वक्ता थे तर्कशील सोसायटी पंजाब के जसवंत सिंह मोहाली। काफी लम्बे समय से तर्कशील आंदोलन से जुड़े एवं इस मुहिम में बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे मोहाली ने कहा कि तर्क सहज ही मानवीय प्रवृत्ति है। बच्चे बेहद जिज्ञासु होते हैं पर उनके तर्कों/सवालों का विरोध परिवार से ही शुरू हो जाता है। समाज में मौजूद अंधविश्वास की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि आज अंधविश्वास, 'बाबावाद' का काफी बड़ा बाजार है। लोग अपनी आर्थिक मांगों, सुविधाओं के लिए तो इकट्ठे हो जाते हैं पर अंधविश्वास के विरुद्ध नहीं। उन्होंने कहा कि खेतों में घांस-फूस तो स्वयं उग आते हैं पर फसल उगानी पड़ती है। इसी तरह लोगों में तर्कशील, वैज्ञानिक चेतना के विकास एवं विस्तार के लिए मिल जुलकर सतत प्रयास करना होगा। उन्होंने बताया कि पंजाब में 1984 में तर्कशील सोसायटी ने आकार लिया। पत्र पत्रिकाओं, किताबों के प्रकाशन प्रसारण का सिलसिला शुरू हुआ। तर्कशील चेतना के विकास से बॉडी डोनेशन जैसे कार्यक्रम को बढ़ावा मिला। स्कूलों में बच्चों के बीच वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं तर्कशील चेतना के विकास के लिए तत्संबंधी पुस्तकों का वितरण एवं विद्यार्थी चेतना परीक्षा के आयोजन का सिलसिला शुरू हुआ। अब पंजाब में इसमें काफी बड़ी संख्या में स्कूलों, बच्चों की भागीदारी होती है। इसके साथ ही बच्चों के समर कैंप का आयोजन भी किया जाता है। उन्होंने बताया कि पंजाब में तर्कशील संदेश को व्यापक बनाने के लिए तर्कशील टीवी की शुरुआत की गई। उन्होंने तर्कशील सोसायटी पंजाब की मुहिम को व्यापक बनाने पर बल देते हुए इससे अधिकाधिक संख्या में युवा पीढ़ी को जोड़ने पर बल दिया।

सुनील सिंह पटना (बिहार)

चर्चा को आगे बढ़ाते हुए पटना बिहार के वरिष्ठ विज्ञान संचारक एवं शिक्षा क्षेत्र से जुड़े इंजिनियर सुनील सिंह ने परिचर्चा के विषय को बेहद महत्वपूर्ण बताते हुए कहा कि आजादी के करीब 76 वर्षों बाद भी हिन्दी भाषी राज्यों में अंधविश्वास एवं जातिवाद का बोलबाला चिंता का विषय है। उन्होंने कहा कि कभी वैदिक संस्कृति की विसंगतियों के खिलाफ बुद्ध ने आवाज उठाई थी। तर्कशील आंदोलन के रूप में हिंदी भाषी राज्यों में भक्ति आंदोलन की भी काफी लम्बी परम्परा रही है। उन्होंने कहा कि कभी यूरोप में प्लेग के घातक प्रभाव ने वहां बौद्धिक जागरूकता को आगे बढ़ाया। जिससे वह विज्ञान की ओर आगे बढ़ा। जबकि कोरोना महामारी के दौरान भारत में अंधविश्वास फैलाने का हर संभव प्रयास किया गया। उन्होंने कहा कि आदमी तर्कशील प्राणी है, जानवर ऐसा नहीं कर सकता। लेकिन महज विज्ञान पढ़ लिख लेने से व्यक्ति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास नहीं हो जाता। उन्होंने कहा कि यहां के अंध राष्ट्रवादी ताकतों के खिलाफ हमलोग प्रभावशाली आंदोलन नहीं कर पाए तथा जातिवाद के जहर ने यहां के समाज को काफी नुकसान पहुंचाया है। उन्होंने जोर देते हुए कहा कि व्यक्ति में, कथनी एवं करनी में एकरूपता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का होना बेहद जरूरी है तथा हमें समसामयिक, ज्वलंत, जन मुद्दों पर खामोश रहने के बजाए सामाजिक विसंगतियों से टकराना पड़ेगा ताकि अवैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देने वाली प्रतिगामी ताकतों को परास्त किया जा सके।

डॉ महेंद्र प्रताप सिंह (उत्तरप्रदेश)

अगले वक्ता थे जनवादी लेखक संघ वाराणसी उत्तरप्रदेश से जुड़े डॉ महेंद्र प्रताप सिंह। उन्होंने कहा कि विज्ञान पढ़ना-पढ़ाना एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण होना दोनों अलग-अलग बात है। तार्किक दृष्टिकोण मानता है कि लौकिक घटनाओं के कारण भी लौकिक होते हैं, पारलौकिक नहीं। गरीबी-अमीरी, सभी प्रकार की गैर-बराबरी, भेदभाव, शिक्षा, स्वास्थ्य, बेरोजगारी, लूट, शोषण, उत्पीड़न, पर्यावरण प्रदूषण, कुपोषण जैसी समस्याएं पूरी तरह लौकिक हैं। जाहिर है इसका समाधान भी यहीं होगा। समाज में कथनी और करनी का फर्क तब सामने आता है जब भूगोल का एक शिक्षक सूर्य या चंद्र ग्रहण का कारण तर्कसंगत बताता है पर खुद शुभ अशुभ के चक्कर में अतार्किक व्यवहार करता है। विज्ञान के क्षेत्र में भी ऐसा दोहरा रवैया देखने को मिलता है। उन्होंने देश के तर्कशील आंदोलन के पुरोधाओं राजाराम मोहन राय समेत अन्य प्रमुख हस्तियों को याद करते हुए कहा कि उनकी तर्कशीलता एवं **शेष पृष्ठ 34 पर**

‘मिथकों से विज्ञान तक’-पुस्तक पर संवाद

प्रगतिशील लेखक संघ के तत्वावधान में चंडीगढ़ में आयोजित एक कार्यक्रम में वैज्ञानिक गौहर रजा की किताब ‘मिथकों से विज्ञान तक’ के विमोचन के अवसर पर वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया। परंपराएं, जनश्रुतियां, पौराणिक, सांस्कृतिक और धार्मिक मान्यताओं तथा वैज्ञानिक स्थापनाओं के बीच टकराव को बहुत ही सरल ढंग से प्रश्नोत्तर शैली में प्रस्तुत किया। प्रश्नकर्ता थे डॉ. स्वराजबीर (पूर्व संपादक पंजाबी ट्रिब्यून)और उत्तर दिया गौहर रजा ने, साथ दिया डॉ. अरविन्द (कुलपति पंजाबी यूनिवर्सिटी पटियाला) और प्रलेस के राष्ट्रीय महासचिव डॉ. सुखदेव सिंह सिरसा ने। उपस्थित श्रोताओं में प्रलेस के पदाधिकारियों के अलावा हरियाणा/पंजाब और चंडीगढ़ के प्रोफेसर/शोध-छात्र/ लेखक और सामाजिक कार्यकर्ता मौजूद थे।

वैज्ञानिक गौहर रजा ने विज्ञान के विकास और संघर्ष पर खुल कर बात-चीत की। उनका कहना था कि मिथकों का प्रचलन सभ्यताओं के शुरुआती दौर में हुआ। आदिम काल में जब मानव कबीलाई युग से सामंत काल में प्रवेश करता है तो इन मिथकों का विस्तार और विकास होता है। परंपराओं और जनश्रुतियों के रूप में मिथक एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संचारित होते हैं। लिपि के आविष्कार के बाद इन्हें लिपी बद्ध किया गया। धीरे-धीरे इन्हें देवी/देवता या ईश्वर के वचन मान लिया गया । बाद में यही मिथक धार्मिक ग्रंथों में समाहित होते गए। सभ्यताओं के शुरुआती दौर में यही उस समय के तर्क थे जिन्हें वैज्ञानिक सत्य कह कर प्रचारित किया गया। जैसे-जैसे विज्ञान का विकास हुआ तो काल्पनिक अनुभवों के आधार पर स्थापित अवधारणाओं का विज्ञान के साथ टकराव होने लगा। उन्होंने कहा कि विज्ञान अपनी आलोचना तो स्वीकार करता ही है, अपनी त्रुटि को भी स्वीकार कर लेता है। अपने में संशोधन करके विज्ञान को प्रसन्नता होती है जबकि धर्म मायूस हो जाता है और इसे अपना अपमान समझता है।

मिथकीय अवधारणाएं स्वयं को अंतिम सत्य मानकर चलती हैं और चाहती हैं कि बाकी सब भी ऐसा ही मानें । विज्ञान अपने सत्य को कभी अंतिम सत्य नहीं मानता।यही दोनों में मुख्य अंतर है।आइंस्टीन ने अपने सामान्य सापेक्षता सिद्धांत में ब्रह्मांड को स्थिर और अपवर्तनीय माना था। लेकिन जब एडविन हबल ने खगोलीय पर्यवेक्षणों के आधार पर बताया कि ब्रह्मांड विस्तार कर रहा है तो आइंस्टीन ने अपनी त्रुटि को स्वीकार कर लिया और ब्रह्मांड के फैलाव की बात को मान्यता दे दी। सापेक्षता सिद्धांत में स्थिरतांक जोड़ना उसने अपनी सबसे बड़ी ग़लती माना। जबकि धर्मसत्ता अपनी किसी भी स्थापना को नहीं बदलती। पृथ्वी घूमती है या सूर्य इस विषय पर गैलीलियो के यह कहने पर कि सूर्य नहीं, पृथ्वी घूमती है- गैलीलियो को जेल में डाल दिया गया और बाद में घर में नजरबंद कर दिया गया (जहां उनकी मृत्यु हो गई)। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि बाईबल में लिखा था कि सौरमंडल का केंद्र धरती है न कि सूर्य अर्थात सूर्य घूमता है ,पृथ्वी नहीं । लगभग तीन सौ पचास वर्ष बाद चर्च ने स्वीकार किया कि गैलीलियो सही थे। जबकि इससे पूर्व पूरी दुनिया गैलीलियो के सिद्धांत को मान चुकी थी। इसी प्रकार ब्रूनो को अपनी वैज्ञानिक स्थापनाओं के कारण जिंदा जला दिया गया क्योंकि उन्होंने बाईबल को एक नैतिक ग्रंथ तो मान लिया था लेकिन उसे वैज्ञानिक सत्य नहीं माना था। इससे सिद्ध होता है कि विज्ञान को कितनी लंबी और कठिन लड़ाई लड़नी पड़ी। कमाल तो यह कि यह लड़ाई आज़ भी जारी है। डार्विन के सिद्धांत को पाठ्यक्रम से हटाना क्या डार्विन के साथ वही व्यवहार करना नहीं है जैसा गैलीलियो या ब्रूनो के साथ किया गया था!! चार्वाक और बुद्ध दर्शन को आज भी नास्तिक दर्शन कहकर नकारने की असफल कोशिश की जाती है। इक्कीसवीं सदी में भी नरेंद्र दाभोलकर, गोबिंद पानसरे, कलबुर्गी, गौरी लंकेश जैसे विद्वानों को उनके वैज्ञानिक प्रगतिशील विचारों के कारण मौत के घाट उतार दिया जाता है । आज भी कुछ मान्यताओं के अनुसार सूर्यग्रहण में राहु-केतु सूर्य को ग्रस लेते हैं। फिल्मों में आज भी भूत-प्रेत और आत्माओं के अस्तित्व को दिखाया जाता है। इससे बहुत सारे अवैज्ञानिक भ्रम फैलते हैं। कोई कानून इन्हें रोकता नहीं है। इससे पता चलता है कि हमारे समाज पर मिथकीय अवधारणाओं का किस कदर प्रभाव है। अंतरिक्ष में राकेट छोड़े जाने से पूर्व वैज्ञानिकों से पूजा करवाया जाना इसी मानसिकता को दर्शाता है ।

विज्ञान के साथ टकराव को लेकर पूछे गए सवाल पर गौहर रजा ने आगे कहा कि विज्ञान का किसी से कोई टकराव

नहीं है। विरोध तो हमेशा दूसरी तरफ से आता है। जो सत्ताएं समाज पर काबिज रही हैं और अगर उन्हें कुछ ऐसा लगता है कि आम लोगों को प्रकृति की सच्चाई पता लगने पर उनकी सत्ता को खतरा पैदा हो सकता है, वे तुरंत सच्चाई को छिपाने का प्रयास करती हैं। विज्ञान उसे अपना सबसे बड़ा शत्रु लगता है। यही विज्ञान और धर्म के टकराव का मुख्य कारण है। कबिलाई युग के बाद सामंतशाही में राजा का आदेश ही कानून होता था। कहीं राजा ईश्वर का प्रतिनिधि, तो कहीं स्वयं ईश्वर होता था। ऐसे में मिथक और विज्ञान का टकराव होना स्वाभाविक था। उन्होंने अर्थशास्त्री एडम स्मिथ को याद किया जिसने कहा था कि विज्ञान ने मनुष्य को आजाद किया है। उनका कहना था कि मार्कसवाद वैज्ञानिक कारणों के कारण ही टिक पाया। मार्कस ने सबसे पहले विज्ञान को ही समझा और उसे दुनिया बदलने के लिए इस्तेमाल किया।

अंत में गौहर रजा का कहना था कि विज्ञान को जन–जन तक ले जाना होगा, इसे लोक कल्याणकारी बनाना होगा, इसके लिए वैज्ञानिकों को भी आगे आना चाहिए। कक्षा और लैब के साथ–साथ समाज के बीच आकर अपनी बात सरल भाषा में रखनी होगी। इसीलिए उन्होंने यह पुस्तक अंग्रेजी की बजाय सरल हिंदी में लिखना ज़रूरी समझा।

इस अवसर पर आस पास के विश्वद्यालयों और महाविद्यालयों से लगभग 80/90 शोध छात्र, प्रोफेसर और प्रलेस/जलेस के सदस्य/ पदाधिकारी तथा प्रसिद्ध लेखक उपस्थित थे। गोहर रजा साहब स्वयं एक वरिष्ठ वैज्ञानिक ही नहीं बल्कि विख्यात शायर, फिल्मकार और सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं। साहित्य और विज्ञान का यह अद्भुत संगम था जो एक ऐतिहासिक यादगारी संवाद कहा जा सकता है। इस अवसर पर आधार प्रकाशन की दो पुस्तकों लाल सिंह दिल–प्रतिनिधि कविताएं (अनुवाद– सत्यपाल सहगल) और 'कौन जात हो'–शरण कुमार लिंबाले (अनुवाद– रीना त्यागी)का विमोचन भी किया गया।

रिपोर्ट –जयपाल

जनवादी लेखक संघ 94666 10508

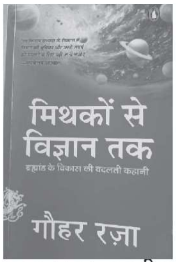
पृष्ठ 32 का शेष संघर्ष की विरासत को हर हाल में आगे बढ़ाया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि अवैज्ञानिक सोच धर्मांधता, संकीर्णता, नफरत, असहिष्णुता, कट्टरता, कुरीति, पाखंड, अंधविश्वास को लेकर देश में स्थिति चाहे जितनी भयावह हो, निराश होने की जरूरत नहीं है तथा उनके खिलाफ सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों स्तर पर प्रतिरोध को मिल जुलकर आगे बढ़ाया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि समाज में जहां कुछ लोग भ्रमित हैं वहीं कुछ लोग जान बूझकर भ्रम फैला रहे हैं जिनसे सावधान रहने एवं बचने की जरूरत है।

परिचर्चा में हरियाणा की शिक्षिका अनुपमा शर्मा ने भी अपने विचार व्यक्त किए। उन्होंने संविधान पर ही सवाल उठाते हुए कहा कि यदि सचमुच संविधान बेहतर होता तो देश की हालत ऐसी ना होती। नई शिक्षा नीति पर सवाल खड़े करते हुए उन्होंने कहा कि लोगों में जागरूकता की बेहद कमी है। विद्यालय का मौजूदा पाठ्यक्रम एवं परिवेश दोनों बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास एवं विस्तार में बाधक हैं तथा विद्यालय में तर्कशील शिक्षक शिक्षिकाओं की स्थिति अच्छी नहीं है। उन्होंने कहा कि मौजूदा हालात को बदलने के लिए सिर्फ बैठक नहीं बल्कि सड़क पर उतर कर संघर्ष करने की जरूरत है।

अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ. अली इमाम खां ने चारों वक्ताओं के वक्तव्य का सार संक्षेप पेश करते हुए कहा कि अंधविश्वास को जिस प्रकार सत्ता पक्ष का खुला समर्थन हासिल है, यह चिंताजनक है। इसके लिए जन विमर्श को व्यापक बनाने एवं मौजूदा व्यवस्था को चुनौती देने की जरूरत है। उन्होंने कहा कि देश में जन विज्ञान आंदोलन को विस्तार देने के लिए जरूरी है कि उसे लोगों की रोजी–रोटी, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, आजीविका आदि के सवालों के साथ जोड़ते हुए आंदोलन को तेज किया जाए। उन्होंने कहा कि अंधविश्वास के पीछे बाजार की ताकतें हैं तथा नई शिक्षा नीति से भी अवैज्ञानिक सोच को ही बढ़ावा मिलता है। उन्होंने कहा कि संविधान की रक्षा सरकार नहीं बल्कि जनता करेगी तथा इसके लिए जन विमर्श को आगे बढ़ाने, व्यापक बनाने एवं विभिन्न जन संगठनों, सामाजिक संगठनों, संस्थानों के बीच नेटवर्किंग की जरूरत है। इस मामले में कला, साहित्य, संस्कृति, नाटक, फिल्म आदि सशक्त माध्यम के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि देश के जनवादी आंदोलन के साथ लोगों की आजीविका के सवाल को भी जोड़ना होगा तथा इसके साथ ही देश की साझी विरासत की रक्षा व साझा संघर्ष को व्यापक बनाने की जरूरत है जो एक संविधान सम्मत, तर्कशील, वैज्ञानिक दृष्टिकोण संपन्न, समतामूलक, विविधतापूर्ण, न्यायपूर्ण एवं आत्मनिर्भर भारत के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करेगा

''तर्कशील पथ'' पढ़े, ''तर्कशील '' बने।

वैज्ञानिक चेतना जगाने वाली किताब 'मिथकों से विज्ञान तक'



'मिथकों से विज्ञान तक' किताब विज्ञान को समझने के लिए बहुत अच्छी किताब है। यह किताब इसलिए भी खास है कि इसमें जो भाषा का उपयोग किया गया है वह आम लोगों को आसानी से समझ आ जाएगी। विज्ञान के विषय में इतनी सरल शब्दों वाली किताब मैंने कभी नहीं पढ़ी है।

गौहर रजा सर से मैं एक कार्यक्रम में रायपुर में मिला था। प्रोग्राम विज्ञान के ही विषय में था। उनके व्याख्यान हिंदी में था। स्पष्ट शब्दों में कोई लागलपेट नहीं करते हुए बोल रहे थे। श्रोतागण बड़े ध्यान से सुन रहे थे, जैसे कोई कहानी कहने वाले कहानी कह रहा हो। उसमें मैं भी एक था। इस व्याख्यान को सुनकर मेरा मन को बहुत सुकून मिला विज्ञान की जानकारी मिली।

इस किताब की शुरूआत विज्ञान क्या है? प्रश्न से होती है। इस पुस्तक में बताया गया है कि लोग विज्ञान को लेकर ज्यादातर किस प्रकार के सवाल पूछते हैं। सामान्य लोगों में विज्ञान को जानने की इच्छा होती है और वे क्या सोचते हैं, इसे बेहतरीन ढ़ग से बताया गया है। ब्रम्हांड की उत्पत्ति और मानव का विकास की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। इस पुस्तक में मशहूर वैज्ञानिक गौहर रजा ने बताया है कि जरूरत के अनुसार मानव किस प्रकार खोज करना चालू किया। डार्विन के विकासवाद से लेकर वैज्ञानिक कोपरनिकस की खोज ने कैसे धर्म की कहानियों की पोल खोल दी थी और इन वैज्ञानिकों को धर्म के हाथों कैसे जिंदा जलना पड़ा। चर्च ने उन्हें मौत की सजा दी। जब गैलीलियों ने दूरबीन देखकर बताया कि धरती घूम रही है और सूरज स्थिर है तो उन्हें नजरबंद करके मार डाला। इस किताब में इतिहास की घटनाओं को याद दिलाते हुए बताया गया है कि आधुनिक विज्ञान किस प्रकार पुरानी बातों को खंडन कर सकता है। लेकिन यही दूसरी ओर धर्म (सभी धर्म) किस प्रकार से वैज्ञानिक होने का दावा करता है।

विज्ञान को जानने-समझने की इच्छा रखने वाले और वैज्ञानिक जागरूकता के लिए काम करने वाले और बुद्धिजीवी से लेकर आम लोगों को यह किताब जरूर पढ़ना चाहिए। खुद पढ़े और दूसरों को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें।

-मनोवैज्ञानिक टिकेश कुमार, अध्यक्ष, एंटी सुपरस्टीशन ऑर्गेनाइजेशन (ASO)

सरगर्मियां (जिला कुरूक्षेत्र)

मानसिक स्वास्थ्य परामर्श केन्द्र की स्थापना : कुरूक्षेत्र में मा. बलजीत सिंह के मार्गदर्शन में मा. बलवंत सिंह मैमोरियल मानसिक स्वास्थ्य परामर्श केन्द्र की स्थापना की गई है, जोकि नरकातारी रोड पर डी.डी. सिटी (सैक्टर-46) के सामने स्थित है। केन्द्र पर मनोरोग पीड़ित व्यक्तियों को नि:शुल्क परामर्श दिया जाता है। फिलहाल तो रोगी सपताह के किसी भी दिन आ सकता है। भविष्य में कोई एक दिन नियत कर दिया जाएगा। रोगी आने से पहले 82950 51400 पर फोन करके अपांएटमैंट ले ता कि उसे कोई परेशानी न हो। यह केन्द्र अप्रैल 2024 से काम कर रहा है। इसमें पूर्व यह केन्द्र मा. बलवंत सिंह के मार्गदर्शन में गांव खानपुर कोलियां (जिला कुरूक्षेत्र) में चलाया जा रहा था, लेकिन मां. बलवंत सिंह के निधन के उपरांत यह केन्द्र बन्द हो गया था।

जिला कुरूक्षेत्र के तर्कशीलों की बैठक :- जिला कुरूक्षेत्र के तर्कशील साथियों की एक बैठक दिनांक 26/5/2024 को ताज पार्क, कुरूक्षेत्र में बलदेव महरोक की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। बैठक में विभिन्न मुद्दों जैसे पत्रिका लगाना, जिले का फंड इक्टठा करना, जिले की नियमित तौर से बैठकें करना, राज्य कमेटी की मीटिंग करवाना, जिला इकाई व इसके साथ-साथ थानेसर, पिपली, लाडवा, बबैन, शाहबाद, इस्माइलाबाद व पेहवा में इकाइयों का गठन करना आदि विषयों पर चर्चा की गई। बैठक में बलदेव महरोक, बलजीत भारती, अश्वनी धुरा, सुभाष धुराला व रविन्द्र शाहबाद उपस्थित रहें। अनुपस्थित साथियां से उनके घर जाकर मुलाकात की गई तथा पत्रिका दी गई।

पाठक टिप्पणी

बरनाला (पंजाब) से प्रकासित पत्रिका "तर्कशील पथ" के जुलाई-अगस्त 2024 के अंक में मेरी लिखी कहानी "भैरव जी का थान" प्रकाशित हुई। मैं मान्य सम्पादक बलवीर लोगोंवाल जी का आभार प्रकट करता हूँ। तर्कशील पत्रिका विज्ञान और तर्क पर आधारित पत्रिका है जिसे हम सब लोगों को परिवार सहित पढ़ना चाहिए। यह पत्रिका हमारे मन-मस्तिष्क में वर्षों से बनी कई अवधारणाओं पर सोचने को विवश कर अंधकार से प्रकाश की ओर लाती है।

-जय प्रकाश वाल्मीकि
जयपुर (राजस्थान)

चमत्कार विज्ञान का: चंद्रशेखर वेंकट रमन की कहानी

–धर्मेन्द्र आज़ाद

यह कहानी है एक ऐसे व्यक्ति की, जिसने अपने वैज्ञानिक सोच से न केवल भारत बल्कि पूरी दुनिया को हैरान कर दिया। नाम है – चंद्रशेखर वेंकट रमन। समय था 1900 के आसपास का। भारत तब अंग्रेज़ों की गुलामी में था, और समाज में हर ओर अंधविश्वास का माहौल फैला हुआ था। लोगों के लिए बारिश, सूखा, बीमारी, और यहाँ तक कि बच्चों का पैदा होना तक किसी न किसी दैवी शक्ति का आशीर्वाद या श्राप माना जाता था। गाँव–देहातों में लोग जब बीमार होते, तो डॉक्टर की बजाय ओझा–गुनी के पास जाते। यही था–उस समय का समाज।

चंद्रशेखर वेंकट रमन का जन्म 7 नवंबर 1888 को तमिलनाडु के एक छोटे–से गाँव तिरुचिरापल्ली में हुआ। उनके पिता एक साधारण शिक्षक थे, जो विज्ञान और गणित में रुचि रखते थे। पिता से ही रमन को शुरुआती दिनों में विज्ञान के प्रति लगाव मिला। घर का माहौल भले ही पढ़ाई–लिखाई वाला था, लेकिन समाज में वैज्ञानिक सोच की भारी कमी थी।



उस समय भारत में विज्ञान और अनुसंधान का माहौल लगभग न के बराबर था। अंग्रेज़ों के शासन के चलते भारतीय वैज्ञानिकों को रिसर्च के लिए कोई खास मदद नहीं मिलती थी। रमन का भी संघर्ष यहीं से शुरू हुआ। बचपन में उन्होंने जब अपने गाँव में लोगों को अंधविश्वास में जकड़ा हुआ देखा, तो उनके मन में सवाल उठने लगे। रमन का मन किताबों में तो लगता ही था, लेकिन उन्हें सबसे ज्यादा पसंद था अपने चारों ओर की दुनिया को करीब से देखना और उसके रहस्यों को समझना।

रमन पढ़ाई में अव्वल थे, और 16 साल की उम्र में उन्होंने बी ए की डिग्री हासिल कर ली। आगे चलकर उन्होंने भौतिकी (फिजिक्स) में मास्टर की डिग्री भी ली। लेकिन पढ़ाई का यह सफर आसान नहीं था। उस दौर में एक भारतीय के लिए विज्ञान में पढ़ाई और अनुसंधान करना काफी मुश्किल था। संसाधनों की कमी थी, अंग्रेजी सरकार का सहयोग नहीं मिलता था, और समाज में भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कमी थी। लोग सवाल पूछने पर अक्सर रमन का मजाक उड़ाते थे, कहते थे कि 'ये तो भगवान के काम हैं, इन्हें इंसान क्या समझेगा!'

रमन का सफर यहीं खत्म नहीं हुआ। 1917 में उन्होंने कोलकाता में इंडियन एसोसिएशन फॉर द कल्टिवेशन ऑफ साइंस (IACS) में बतौर प्रोफेसर काम शुरू किया। उनकी जिज्ञासा हमेशा नए सवालों की ओर दौड़ती थी। एक बार वो यूरोप की यात्रा कर रहे थे और समुद्र का नीला रंग देखकर अचंभित रह गए। जहाँ आम लोग इसे ''भगवान की लीला'' मानकर बैठ जाते, रमन ने सोचा कि इसका कोई वैज्ञानिक कारण होगा। उन्होंने इस विषय पर दो साल तक गहन अध्ययन किया।

अंग्रेजों के शासन के चलते रिसर्च के संसाधनों की भारी कमी थी। रमन को विदेशों से महंगे उपकरण मंगवाना मुश्किल था। उन्होंने अपनी रचनात्मकता का उपयोग करते हुए सस्ते और स्थानीय उपकरणों से ही अपने प्रयोग किए। आखिरकार, 28 फरवरी 1928 को उन्होंने दुनिया के सामने ''रमन प्रभाव'' की खोज पेश की। रमन ने सिद्ध किया कि जब प्रकाश किसी पारदर्शी माध्यम (जैसे काँच या पानी) से गुजरता है, तो उसकी दिशा और तरंग–लंबाई में बदलाव आता है। उनकी यह खोज न केवल समुद्र के नीले रंग का रहस्य सुलझाती थी, बल्कि प्रकाश और पदार्थ के संबंधों को भी नए सिरे से परिभाषित करती थी।

रमन का यह सफर आसान नहीं था। भारतीय वैज्ञानिकों को उस समय अंग्रेजों के सामने खुद को साबित करना कठिन था। लेकिन रमन के वैज्ञानिक दृष्टिकोण और जिज्ञासा ने उन्हें आगे बढ़ने की ताकत दी। उनकी खोज ने दुनिया में तहलका मचा दिया और 1930 में उन्हें भौतिकी के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह किसी भारतीय का विज्ञान में पहला नोबेल पुरस्कार था।

इस कहानी में सबसे खास बात यह थी कि रमन ने एक ऐसे समय में अपनी खोज की, जब भारत गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था और समाज अंधविश्वास के जाल में फँसा था। रमन ने हमें दिखाया कि यदि हमारे पास वैज्ञानिक दृष्टिकोण हो, जिज्ञासा हो और कठिन से कठिन

शेष पृष्ठ 37 पर

बीरभूम : जादू-टोने के शक में दो आदिवासी महिलाओं की हत्या

जनसत्ता ब्यूरो (नई दिल्ली): पश्चिम बंगाल के बीरभूम जिले में अधेड़ उम्र की दो आदिवासी महिलाओं की पड़ोसियों ने जादू-टोना करने के शक में कथित तौर पर पीट-पीटकर हत्या कर दी। पुलिस ने यह जानकारी दी। पुलिस ने बताया कि दोनों आदिवासी महिलाओं के शव मयूरेशवर पुलिस थाना क्षेत्र के अंतर्गत हरिसराह गांव के पास एक नहर में मिले। उसने बताया कि घटना में 15 लोगों को गिरफ़तार किया गया है।

मृतका लोदगी किस्कू और डाली सोरेन के परिवार के सदस्यों ने आरोप लगाया कि उन्हें रात में कुछ लोगों ने घरों से बाहर बुलाया और रस्सियों से बांधने के बाद लाठियों से पीटा।

लोदकी किस्कू की बेटी रानी किस्कू ने बताया, 'मेरे चचेरे भाई और अन्य ग्रामीणों ने मेरी मां को घर से बाहर खींच लिया। मेरे दो भाई घर से बाहर थे, इसलिए हम उनको बचा नहीं सके।' एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी ने बताया कि प्रथम दृष्टि में हत्या के पीछे जादू-टोना करने का संदेह प्रतीत होता है, 'लेकिन हम अन्य संभावनाओं से भी इनकार नहीं कर रहे हैं।' घटना की सूचना मिलने के बाद बड़ी संख्या में पुलिस बल गांव पहुंचा और मामले में कथित संलिप्तता के आरोप में 15 लोगों को गिरफतार कर लिया। पुलिस ने बताया कि उसे भीड़ द्वारा कथित पिटाई की एक वीडियो क्लिप मिली है और फुटेज का विश्लेषण किया जा रहा है। गिरफतार किए गए 15 आरोपियों को बाद में रामपुरहाट के अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत में पेश किया गया।

जादू-टोने के शक में 3 महिलाओं समेत 5 लोगों की हत्या

सुकमा, सितंबर (प.स.): छत्तीसगढ़ के आदिवासी बहुल सुकमा जिले के एक गांव में रविवार को जादू-टोना करने के संदेह में 2 दंपतियों और एक महिला की कथित तौर पर पीट-पीटकर हत्या कर दी गई।

पुलिस ने बताया की हत्या के सिलसिले में एक ही गांव के 5 लोगों को हिरासत में लिया गया है और उनसे पूछताछ की जा रही है। एक पुलिस अधिकारी ने यहां बताया कि यह घटना कोंटा थाना क्षेत्र के एकतल गांव में हुई और पीड़ितों की पहचान मौसम कन्ना (34), उसकी पत्नी मौसम आरजू (32) और एक अन्य महिला करका लच्छी (43) के रूप में हुई है।

उन्होंने बताया कि सूचना मिलने के बाद वरिष्ठ अधिकारी मौके पर पहुंचे। उन्होंने बताया कि हिरासत में लिए गए आरोपियों में सवलम राजेश (21), सवलम हिड़मा, करम सत्यम (35), कुंजम मुकेश (28) और पोडियाम एंका शामिल हैं।

अब तो मज़हब कोई ऐसा भी चलाया जाए

अब तो मज़हब कोई ऐसा भी चलाया जाए
जिस में इंसान को इंसान बनाया जाए

जिस की ख़ुश्बू से महक जाए पड़ोसी का भी घर
फूल इस क़िस्म का हर सम्त खिलाया जाए

प्यार का ख़ून हुआ क्यूं ये समझने के लिए
हर अंधेरे को उजाले में बुलाया जाए

मेरे दुख-दर्द का तुझ पर हो असर कुछ ऐसा
मैं रहूं भूखा तो तुझ से भी न खाया जाए

जिस्म दो हो के भी दिल एक हों अपने ऐसे
मेरा आंसू तेरी पलकों से उठाया जाए

गीत उन्मन है ग़ज़ल चुप है रुबाई है दुखी
ऐसे माहौल में 'नीरज' को बुलाया जाए

...गोपालदास नीरज

पृष्ठ 36 का शेष हालात में भी सवाल पूछने की हिम्मत हो, तो हम बड़ी से बड़ी चुनौतियों का सामना कर सकते हैं।

उनकी यह खोज केवल एक वैज्ञानिक की सफलता नहीं थी, बल्कि यह संदेश थी कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने से अंधविश्वास और अज्ञानता को हराया जा सकता है। आज 28 फरवरी को पूरे भारत में ''राष्ट्रीय विज्ञान दिवस'' के रूप में मनाया जाता है, ताकि हम यह याद रख सकें कि चमत्कार भगवान के भरोसे नहीं होते, बल्कि विज्ञान के प्रति हमारी समझ और प्रयासों से होते हैं।

लग्न मुहूर्त क्या पूछना ?

– रणजीत कबीरपंथी

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार लग्न का अर्थ समय माना गया है। अर्थात लग्न उतने समय को कहते हैं जितने समय में कोई राशि किसी विशिष्ट स्थान में रहती है। राशि क्रांतिवृत्त अर्थात सूर्य के मार्ग में पड़ने वाले तारों के समूह को कहते हैं। आकाश में ऐसे तारा समूह बारह माने गए हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं– मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुंभ और मीन। ये सभी अन्य तारा–समूहों की तरह आकाश में स्थित आकाशीय पिण्ड हैं। ज्योतिष शास्त्री इन्हीं विभिन्न तारा–समूहों के अनुसार शादी–विवाह का मुहूर्त देखते हैं और विवाह का जो समय निश्चित करते है उसे वे लग्न कहते हैं।

वस्तुतः लग्न दो व्यक्तियों के परस्पर मिलने, सम्बन्ध स्थापित करने की उत्कट इच्छा–भावना का नाम है। वे परस्पर भावात्मक रूप से जुड़ जाना चाहते हैं। प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। उनकी इस प्रबल इच्छा या भावना का नाम ही वास्तविक लग्न है। अपनी इस इच्छा या भावना को दूसरे व्यक्ति तक स्वयं या किसी सजीव माध्यम या फिर पत्र द्वारा पहुंचाया जाता है।

यदि किन्हीं दो व्यक्तियों में परस्पर लग्न अर्थात मिलने की कोई उत्कंठा ही न हो तो फिर कोई तीसरा व्यक्ति उन्हें कैसे मिला सकता है? उनका 'लग्न' कैसे रच सकता है परन्तु हैरानी की बात है कि ऐसा हुआ और हो रहा है। लग्न रचे ही नहीं गए बल्कि लिखे तक गए हैं। और मजे की बात तो यह है कि कई लोगों ने इसे अपना व्यवसाय बना रखा है।

अब विचारिये कि यदि किन्हीं दो व्यक्तियों में परस्पर मिलने की कोई लगन नहीं है, कोई प्रेम नहीं है तो फिर कोई कितना ही अच्छा कल लिख दे, उससे क्या होने का? क्या वे दोनों परस्पर मिल सकेंगे? या उनमें प्रेम हो जाएगा? कदापि नहीं।

कहते हैं कि अच्छी लग्न लिखवाने से शादी–विवाह में कोई विघन नहीं आता। वर–वधू का वैवाहिक जीवन सुखपूर्वक बीतता है। वे चिरायु रहते हैं। परन्तु यह धारणा निराधार, कल्पित, भ्रामक एवं मिथ्या है।

लग्न के विषय में एक बात यह भी देखी गई है कि अच्छी लग्न बताने वाले कई की पुत्रियां शादी होते ही विधवा हो जाती है या फिर उनका दाम्पत्य जीवन बहुत दुखमय व्यतीत होता है। कई एक की पुत्रियां ही कुंआरी रह जाती हैं।

इस तरह लग्न की बात मिथ्या ही है। अतः जब बाल–बच्चे विवाह योग्य हो जाएं तो योग्य जोड़ा मिलाकर उनका विवाह कर देना चाहिए। किसी से न तो कोई लग्न पूछने की आवश्यकता है और न ही लिखवाने की।

लग्न की तरह लोग मुहूर्त का भी अनर्थ करते हैं। ज्योतिष शास्त्री मुहूर्त का अर्थ दिन–रात के तीसवें भाग को मानते हैं। इसी में से फलित ज्योतिषशास्त्री किसी एक समय को निश्चित कर देते हैं जिसमें कोई 'शुभ' कार्य किया जाता है।

जहां तक हम फलित ज्योतिष शास्त्रियों के माने गए मुहूर्त के सम्बन्ध में विचार करें तो स्पष्ट रूप से यह पता चलता है कि वह कल्पना पर आधारित है और साथ ही वह विज्ञान–सम्मत भी नहीं है। अतः वह अमान्य है।

यदि हम मुहूर्त का अर्थ उचित समय ही मानें तो फिर कोई बात नहीं। कहने का अर्थ यह है कि समय की अनुकूलता देखकर कार्य करना चाहिए। जैसे यदि गरमी का मौसम है, तेज गरमी है, लू चल रही है, तो ऐसे अवसर पर घर से बाहर निकल कर काम पर जाना उचित नहीं रहेगा। इसी तरह वर्षा ऋतु है। पानी बरसने की तैयारी है तो ऐसी ऋतु में कुआं खोदने के लिए उद्यत होना उचित नहीं है। कुआं खोदने का कार्य ग्रीष्म ऋतु में करना उचित रहेगा। इसी तरह फसल बोने का कार्य पर्याप्त वर्षा होने पर किया जाना ठीक रहेगा। मकान बनवाने का कार्य अन्य कार्यों से फुर्सत पाने के बाद करना ठीक रहता है। यही मुहूर्त का वास्तविक अर्थ हुआ ।

इस विषय में हमें यह विचार करना चाहिए कि यदि किसी कार्य को करने का उपयुक्त अवसर नहीं है और किसी फलित ज्योतिषशास्त्री के निर्देशानुसार हम कोई कार्य करेंगे तो वह निश्चित रूप से बिगड़ेगा और यदि हमने किसी ज्योतिषशास्त्री से मुहूर्त पूछने के बजाए उपयुक्त अवसर देखकर कार्य कर लिया तो हमें सफलता मिलेगी ही। अतः किसी फलित ज्योतिषी के पास जाकर मुहूर्त पूछने की कोई आवश्यकता नहीं।

धर्म और ईश्वर
गरीबों के सबसे बड़े दुश्मन हैं
– राहुल सांकृत्यायन

विज्ञान ऐसे ही आगे बढ़ता

– किशोर पवार

जीव विज्ञान की कक्षाओं में कई बार यह प्रश्न उठता है कि क्या सूखे बीज जीवित हैं। जानकार लोगों द्वारा जवाब 'हां' में दिया जाता है। यह कहा जाता है कि बीज बोने पर वे उगकर नया पौधा बनाते हैं। क्योंकि जीव से ही जीव उत्पन्न होता है इसलिए बीज जीवित हुए–उनसे ही तो नया पौधा बनता है।

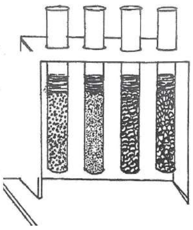
पर बिना उगाये क्या यह तय किया जा सकता है कि बीज जीवित हैं या नहीं? अब अगर हम यह दिखा सकें कि बीजों में श्वसन हो रहा है तो बीजों को जीवित मानना ही पड़ेगा।

श्वसन क्रिया में तकरीबन सभी जीव ऑक्सीजन इस्तेमाल करते हैं और कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ते हैं। मनुष्य द्वारा सांस में छोड़ी गई हवा में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा ज़्यादा होती है, यह तो आसानी से दिखाया जा सकता है। यदि आप चूने के पानी के घोल में से एक नली द्वारा फूंक मारकर लगातार हवा गुज्जारें तो चूने का पानी दूधिया हो जाता है। ऐसे ही अगर फिनाफ्थलीन के रंगीन घोल में फूंक मारें तो उसका रंग उड़ जाता है। जबकि चूने के पानी या फिनाफ्थलीन के रंगीन घोल में से किसी पंप द्वारा हवा गुज्जारें तो कोई परिवर्तन नहीं होता या फिर बदलाव बहुत ही धीमा होता है।

जीव विज्ञान की कक्षाओं में कई बार यह प्रश्न उठता है कि क्या सूखे बीज जीवित हैं। जानकार लोगों द्वारा जवाब 'हां' में दिया जाता है। यह कहा जाता है कि बीज बोने पर वे उगकर नया पौधा बनाते हैं। क्योंकि जीव से ही जीव उत्पन्न होता है इसलिए बीज जीवित हुए–उनसे ही तो नया पौधा बनता है।

ऐसा ही एक प्रयोग सन् 1988 में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के शिक्षक प्रशिक्षण शिविर के दौरान बीजों को लेकर किया गया था। जिसमें तरह–तरह के सूखे बीजों से चार–पांच परखनलियों को आधा–आधा भर दिया और फिर उनमें फिनाफ्थलीन का रंगीन घोल डाला गया। लगभग एक घंटे बाद अवलोकन लेने पर देखा गया कि जिन परखनलियों में बीज रखे थे उनमें घोल का रंग हल्का होने लगा। ज्यादा समय तक रखने पर फिनाफ्थलीन का रंग बिल्कुल उड़ जाता है।

बीज जीवित हैं या निर्जीव : यह पता करने के लिए एक प्रयोग–चारों परखनलियों में फिनोफ्थलीन का गुलाबी सूचक घोल डालकर तीन में बीज डाले हैं और चौथी में रेत के कण। इन्हें थोड़ी देर यूं ही रखा रहने देते हैं। यही कोई दो–तीन घंटे। कुछ समय बाद उन सब परखनलियों का रंगीन घोल रंगहीन हो जाना है जिनमें बीज डाले थे। जबकि रेत वाले घोल का रंग पहले जैसा ही रहता है।



रंग में परिवर्तन बीजों के आसपास सबसे पहले होता है, जहां बीज घोल के संपर्क में आ रहे हैं। ऐसा लगा कि प्रयोग सफल रहा। बीजों से श्वसन के दौरान कार्बन डाइऑक्साइड निकली और रंगीन फिनाफ्थलीन को रंगहीन कर दिया।'

यानी यह तय हो गया कि सूखे बीज श्वसन करते हैं। इस प्रयोग में तुलना का प्रावधान (कन्ट्रोल) रखने के लिए इन सब बीज वाली परखनलियों के साथ एक परखनली में धुली हुई रेत या कंकड़ लिए जाते हैं। उसमें भी फिनाफ्थलीन का रंगीन घोल भरा जाता है।

बुरे फंसे

इस प्रयोग से प्रेरित होकर हमारे एक शिक्षक साथी पटैल मास्साब ने यही प्रयोग सूखी पत्तियों के चूरे और–पेड़ों की सूखी छाल के साथ करके देखा। पता चला कि दोनों फिनाफ्थलीन का रंग उड़ा देते हैं। तो क्या यह मान लिया जाए कि सूखी पत्तियां और पेड़ों की छाल भी श्वसन करते हैं!

कुछ देर के लिए तो सब सोच में पड़ गए कि आखिर चक्कर क्या है, गलती कहां हुई? फिर समझ में आया कि दरअसल फिनोफ्थलीन तो सूचक मात्र है जो अम्लीय माध्यम में गुलाबी से रंगहीन हो जाता है। अर्थात उससे सिर्फ यह पता लगता है कि माध्यम अम्लीय हो गया है। लेकिन माध्यम श्वसन की प्रक्रिया के कारण पैदा हुई कार्बन डाइऑक्साईड के पानी में घुलने से अम्लीय हुआ है या किसी और कारण से – इस प्रयोग में यह पता करने का तो कोई तरीका नहीं है।

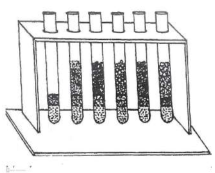
थोड़ा दिमाग लड़ाने पर यह तो समझ में आ गया कि

अधिकांश पत्तियां और छाल अम्लीय होती हैं इसलिए उन्होंने फिनोफ्थलीन का रंग उड़ा दिया। पर अब सवाल यह था कि पटैल मास्साब ने जिस उलझन में फंसा दिया है उसमें से निकला कैसे जाए? आखिर कैसे साबित किया जाए कि बीज श्वसन करते हैं?

इस प्रयोग में एक और दिक्कत थी कि फिनोफ्थलीन के रंगीन घोल में डालने पर स्वाभाविक है कि बीज भीग जाते हैं। इसलिए जब घोल का रंग उड़ जाता है तो सिर्फ यही कहा जा सकता है कि भीगे हुए बीज श्वसन करते हैं। यह कतई नहीं कहा जा सकता कि सूखे बीज श्वसन करते हैं।

इसलिए यह तय किया गया कि अगली बार प्रयोग को इस तरह डिजाइन किया जाए कि बीज या सूखी पत्तियां फिनोफ्थलीन के सीधे संपर्क में ही न आयें। ऐसे में अम्लीय होते हुए भी ये पदार्थ घोल का रंग नहीं उड़ा पाएंगे। और यदि श्वसन हुआ तभी कार्बन डाइऑक्साइड निकलेगी जो फिनोफ्थलीन को रंगहीन कर पायेगी अन्यथा कोई परिवर्तन नहीं होगा।

पहले वाले प्रयोग को करने का एक बेहतर तरीका : पता तो करना था कि सूखे बीज श्वसन करते हैं कि नहीं लेकिन पहले वाले प्रयोग में केवल यही कहा जा सकता है कि गीले बीज स्वसन करते हैं, क्योंकि बीज फिनोफ्थलीन में भीग जाते हैं। इसलिए इस प्रयोग में फिनोफ्थलीन और बीज व रेत के बीच रूई लगाकर दोनों को अलग-अलग कर दिया गया है ताकि बीज या रेत भीगे नहीं और जांच की जा सके कि सूखे बीज भी श्वसन करते हैं या नहीं।



एक कोशिश और

हाल ही में वेड़छी (गुजरात) में इस तरह के एक ओर विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के दौरान इस प्रयोग को करने का फिर से मौका मिला। इस बार परखनली में फिनोफ्थलीन का रंगीन घोल भर कर उस पर सावधानी से एक रूई का फाहा लगा दिया।

रूई के फाहे के ऊपर बिना किसी चीज को हिलाए-हुलाए धीरे-धीरे से ऊपर तक बीज भर दिए जाते हैं। इसमें भी तुलना का प्रावधान रखने के लिए एक परखनली में रूई के फाहे के ऊपर रेत रख दी जाती है। चार-पांच घंटे बाद देखा गया कि जिन परखनलियों में रूई के फाहे पर बीज रखे गए थे उन सब में फिनोफ्थलीन का रंग उड़ जाता है। इससे स्पष्ट तौर पर सिद्ध होता है कि 'सूखे बीज' श्वसन करते हैं। चूंकि कार्बन डाइऑक्साइड गैस हवा से भारी है, अत: रूई से होती हुई नीचे जाकर फिनोफ्थलीन को रंगहीन बना देती है।

अब यह प्रयोग सूखी पत्तियों व छाल के साथ करने पर भी कोई परेशानी नहीं हुई।

संभावनाएं ओर भी हैं

आप भी इस प्रयोग को खुद करके देखिए और अपने विद्यार्थियों से भी करवाइए। प्रयोग करते वक्त कई और प्रश्नों पर भी गौर किया जा सकता है, जैसे कि-

क्या सब परखनलियों में रंग परिवर्तन की दर एक जितनी ही है या कुछ परखनलियों में कम या ज़्यादा है? क्या इस आधार पर हम विभिन्न बीजों की श्वसन दर के बारे में पक्के तौर पर कुछ कह सकते हैं ? रूई की जगह क्या किसी अन्य पदार्थ का उपयोग बीजों को फिनोफ्थलीन से दूर रखने के लिए किया जा सकता है?

इस पूरी प्रक्रिया के दौरान यह प्रयोग तो ज़्यादा सटीक बना ही पर साथ ही एक ओर बात समझ में आई कि शायद इसी तरह के प्रश्नों, उलझनों और उन्हें हल करने की कोशिशों से भी विज्ञान आगे बढ़ता है। **(स्रोत : पत्रिका 'संदर्भ')**

कविता

ब्रह्मांड की कथा: विज्ञान की दृष्टि से

जो विज्ञान को समझ नहीं सके,
उनका कहना स्वाभाविक है कि
ब्रह्मांड की रचना किसी दैवीय शक्ति ने की है।
पर क्या यह सच है?
विज्ञान कहता है कि
किसी दैवीय शक्ति ने नहीं,
बल्कि एक महाविस्फोट का है यह परिणाम।
13.8 अरब साल पहले,
बिग बैंग ने जन्म दिया समय को,
उस क्षण से, हर कण, हर ऊर्जा का आगाज़ हुआ।
न कोई आकाश था, न कोई तारे बने थे तब,
बस घना, गर्म, और सघन ऊर्जा का बादल।
क्वार्क्स और ग्लूऑन्स आपस में टकराए,
पहली बार प्रोटॉन और न्यूट्रॉन उभरे-
यहीं से हर कण की पैदाइश हुई। **शेष पृष्ठ 43 पर**

नयी कहानी और दुष्यंत कुमार

–सुश्री कविता

बतौर लेखक दुष्यंत कुमार पर गजलकार का लेबल चस्पा है। लेकिन दिलचस्प बात है कि गजलें उनका पहला प्यार या फिर चुनाव नहीं थीं। इनसे पहले वे उपन्यास, नाटक, एकांकी और कविता सरीखी हर विधा में अपना हाथ आजमा चुके थे। इन सब में उन्होंने हाथ ही नहीं आजमाया, हर जगह अपनी साफ छाप भी छोड़ी। यहां तक कि आम तौर पर लेखक साहित्य की जिस एक विधा की तरफ सबसे कम जाते हैं उस कठिन क्षेत्र में भी दुष्यंत कुमार काम कर रहे थे, यानी 'आलोचना' में।

इसका सबसे प्रमुख उदाहरण है 'नयी कहानी'। कहानी परंपरा के इस नए आंदोलन, जिसके प्रमुख सूत्रधार मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर माने जाते हैं, का नामकरण भी दुष्यंत कुमार का ही किया हुआ है। अपने एक लेख में उन्होंने बाकायदा यह बात पुष्ट की थी कि क्यों और किस तरह ये कहानियां पुरानी कहानियों से अलग हैं और यह भी कि आखिरकार इनका नाम 'नयी कहानी' ही क्यों हो।



फिर भी कुछ अधूरापन और कोई तलाश अब भी दुष्यंत के लेखन का एक जरूरी हिस्सा थी, शायद वह एक फोर्म जो एकदम उनकी अपनी हो। जहाँ वह अपनी बात को अपने लहजे में और अपने तरीके से कह सकें, ठीक वैसे ही जैसी उनकी चाहत है। तलाश की उनकी इस अनवरत यात्रा ने अंततः गजल तक पहुंचकर अपनी संतुष्टि और अपना मुकाम पाया।

गजल की उनकी एकमात्र किताब 'साए में धूप' ने फिर इतना कुछ उन्हें दिया कि उन्हें ओर किसी पहचान की जरूरत ही नहीं रही। मात्र 64 गजलों से बनी इस किताब ने प्रसिद्धि के नए आयाम रचे तो इसलिए कि उसके एक-एक शेर में दुष्यंत कुमार जिंदगी और समाज की शिनाख्त करते चले।

वह जमाना भी कुछ ओर था। उन दिनों के रचनाकारों के बीच रिश्तों और दोस्ती का ऐसा आलम था कि वे सिर्फ न एक दूसरे को उनके क्षेत्र में खड़ा कर रहे थे बल्कि उन्हें स्थापित करने के सारे यतन भी किये जा रहे थे। चाहे मनोबल बढ़ाने के जरिये ही सही। यह साथ कई बार तो देर तक और दूर तक का रहा। कमलेश्वर और दुष्यंत कुमार के मामले में खासकर मित्रता से आगे बढ़कर यह संबंध रिश्तेदारी में (दोनों समधी थे) बदल जाता है। यही नहीं 'साये में धूप' की भूमिका में अपने गजल लिखने का लगभग सारा श्रेय वे लेखक कमलेश्वर के खाते में डालते हुए लिखते हैं, कमलेश्वर इस अफसाने में न होता तो यह सिलसिला शायद यहाँ तक न आ पाता– 'हाथों में अंगारे लिए सोच रहा था। कोई मुझे अंगारों की तासीर बताये।'

दुष्यंत कुमार की गजलों में आम इंसानों की छटपटाहट है। उनके स्वप्न भंग है, हमारी सामाजिक दशा है। उसकी पेचीदगियां हैं और इस सबके साथ अपने परिवेश से दुखी और नाराज लोगों की बेचैनी और उनकी चीखें भी हैं। उन्हें शिकायत है तो सबसे है। खुद से, देश से, संविधान से, सरकार से, पर सबसे पहली शिकायत उनकी उन जैसे लोगों से ही है। उनकी मजबूरियों से भी ज्यादा उनकी चुनी हुई चुप्पियों से। वे लिखते हैं, तुम्हारे पांव के नीचे कोई जमीन नहीं, कमाल यह है कि फिर भी तुम्हें यकीन नहीं। या फिर 'न हो कमीज तो घुटने से पेट ढक लेंगे ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफर के लिए।'

इससे ज्यादा साहस और हैरत की बात ओर क्या हो सकती है कि कोई लेखक सरकारी नौकरी करते हुए भी व्यवस्था विरोध वाले शेर कहता और लिखता हो। वह भी आपाताकाल जैसे सेंसरशिप वाले वक्त में। वह भी सीधे सरकार की तरफ इशारा करते हुए। उनके इस मंतव्य के कुछ शेर बहुत प्रसिद्ध हुए थे, जिनका सीधा संदर्भ आपातकाल और तत्कालीन प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी से जुड़ता था। मसलन–'मत कहो आकाश में कुहरा घना है यह किसी की व्यक्तिगत आलोचना है' या 'फिर एक गुड़िया की कई कठपुतलियों में जान है और शायर ये तमाशा देखकर हैरान हैं।' इसी शेर का अगला हिस्सा सम्पूर्ण क्रांति का नारा देने वाले जयप्रकाश नारायण को समर्पित था। दुष्यंत कुमार ने लिखा–'एक बूढ़ा आदमी है मुल्क में या यूं कहो इस अंधेरी कोठरी में कोई रोशनदान है।'

निरर्थकता और बेचैनी का वह घना बोध जो दुष्यंत कुमार की गजलों का मुख्य विषय रहा है, आपातकाल विरोधी आंदोलन के साथ आशावाद के सपनों में खोने लगता है। बेचौनियां, बेचारगी का रास्ता भूलने लगती हैं और उनके भीतर का शायर उम्मीदों से भरकर कहता है– खुदा सही न सही आदमी का ख्वाब सही... पर यह त्रासदी रही कि इस आंदोलन के खत्म होने तक दुष्यंत भी अपने सपनों के साथ अपनी अंतिम यात्रा पर निकल चुके थे, सिर्फ 42 वर्ष की उम्र में। दुष्यंत के शेर

बगावती हैं, पर उन्होंने सिर्फ बगावती शेर ही लिखे, यह धारणा गलत है। उनके शेरों में प्रेम के रंग भी हैं। कम हैं तो इसलिए कि उनके मनमाफिक प्रेम का रंग दुनिया में उस तरह बचा ही नहीं था। और जो और जितना था उस पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि अब कुछ कहने की उतनी जरूरत ही नहीं थी। पर जब भी वे उसे अपने शब्दों में कहते हैं, तो जैसे प्रेम भी इन शब्दों छुअन भर से बिलकुल नया–नया हो उठता है मसलन **'मैं तुम्हें भूलने की कोशिश में आज कितने करीब पाता हूं...तू किसी रेल सी गुजरती है मैं किसी पुल सा थरथराता हूँ'।**

और–'तुमको पुकारता हूं कबसे मैं ॠतम्भरा, अब शाम हो चुकी है मगर दिल नहीं भरा।'

दुष्यंत की गजलों के प्रशंसक शिक्षक भी रहे, छात्र भी, नेता भी रहे और अभिनेता भी। मनोज बाजपेयी कहते हैं उन्हें कविता पढने का चस्का दुष्यंत के शेरों को पढ़ने सुनने के बाद ही लगा। दुष्यंत कुमार की ग़जलों के मशहूर होने का एक बडा सबब यही था कि लोगों को उनकी ग़जलों में अपना अक्स और अपने दर्द की परछाइयां नजर आ रही थीं। वे मुद्दे भी जो उनके कलेजे में फाँस की तरह चुभते थे पर उनकी मजबूरियां जहां उनकी जुबान सिल देती थीं। दुष्यंत भी यह बूझते थे इसलिए तो उन्होंने लिखा, मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूं।

दुष्यंत कुमार को हिंदी गजलों के शुरुआती शायर के रूप में याद किया जाता है। पर उनसे पहले निराला, नीरज, गोपाल सिंह नेपाली जैसे अन्य कई कवि–गीतकार गजल और गीत लिखकर यही करते आ रहे थे। सवाल फिर यह उठता है कि फिर कैसे वे हिंदी के पहले शायर हुए ? वे ऐसा क्या नया कर गए कि पूरी हिंदी गजल की परम्परा को उनके नाम से जोड़कर देखा और जाना जाने लगा?

इस बात को समझने के लिए पहले दुष्यंत के इन शेरों से रुबरू होना होगा, 'वे कर रहे हैं इश्क पे संजीदा गुफ्तगू, मैं क्या बताऊं, मेरा कहीं ओर ध्यान है।' या फिर, 'मैं जिसे ओढ़ता विछाता हूं यो गजल आपको सुनाता हूं' यहां यह बिलकुल स्पष्ट है कि उनके लिए गजल लिखने का मतलब जिंदगी को गजलों की शर्त पर जीना या गजलों की तरह जीना तो है ही. कहीं इससे भी अलग रोजमर्रा की तमाम बातों को, उसकी भाषा को, शब्दों को जिंदगी से गजल में बुला लेना भी है. इसीलिए यहाँ 'कहीं ओर ध्यान' होने का मतलब गजल को इश्क के जाल से निकलकर आम लोगों से जोड़ने और उनसे मुखातिब करने से है।

तब तक यह एक आम धारणा चलती आ रही थी कि अगर गजल कही जा रही तो उसमें 'इश्क और माशूक' का जिक्र होना निहायत जरूरी है। महबूब के जुल्फों के पेंचो – खम की बातें करना भी इस परंपरा का एक मकबूल हिस्सा रहा और 'सागरो – मीना' की बात करना इसकी एक जरूरी रस्म। यह भी एक कारण था कि अपनी कविताओं में बेहद सामान्य और निचले तबके के लोगों की बातें करने वाले निराला भी गजल लिखते हुए परंपरा के फंदे में फंसते दिखे. जो नहीं फंसे उन्होंने अपना रुख सूफियाना कलामों और दार्शनिकता की तरफ कर लिया। हिंदी का पहला शायर होने का खिताब दुष्यंत कुमार के हिस्से है तो सिर्फ इसी कारण।

खुद दुष्यंत कुमार ने भी कहा था, 'अपनी सामर्थ्य और सीमा को जानने के बावजूद इस विधा में उतरते हुए मुझे संकोच तो है पर उतना नहीं, जितना होना चाहिए। मुझे अपने बारे में कभी मुगालते नहीं रहे। मैं मानता हूं मैं गालिब नहीं हूँ। उस प्रतिभा का शतांश भी मुझमें नहीं है। लेकिन मैं यह नहीं मानता कि मेरी तकलीफ गालिब से कम है या मैंने उसे कम शिद्दत से महसूस किया। अपनी कहूं तो बस अपनी अनुभूति की जरा सी पूंजी को लेकर मैं उस्तादों और महारथियों के अखाड़े में उतर आया था। गजल मुझ पर एकाएक नाजिल नहीं हुई। भारतीय कवियों में सबसे प्रखर अनुभूति के कवि मिर्जा गालिब ने अपनी पीड़ा को अभिव्यक्त करने के लिए गजल का ही माध्यम क्यों चुना? अगर गालिब गजल के माध्यम से अपनी निजी तकलीफ को इतना सार्वजनिक बना सकते हैं तो मेरी दुहरी तकलीफ (जो व्यक्तिगत भी है और सार्वजनिक भी) इस माध्यम के सहारे एक अपेक्षाकृत व्यापक पाठक वर्ग तक क्यों नहीं पहुँच सकती?'

जब उन्हें उनकी गजलों में उर्दू भाषा के हिसाब से इस्तेमाल हुए अशुद्ध रूपों के लिए टोका गया तो उनका कहना था–'ये गजलें उस भाषा में कही गयी हैं जिसमें मैं बोलता हूं। मैंने, उर्दू शब्दों को उस रूप में इस्तेमाल किया है, जिस रूप में वो हिंदी भाषा में घुले–मिले हुए हैं। उर्दू और हिंदी अपने सिंहासन से उतरकर जब आम आदमी के पास आती है तो उनमें फर्क करना बहुत मुश्किल हो जाता है. और मेरी कोशिश यह रही है कि इन दोनों भाषाओं को ज्यादा करीब ला सकूं।'

कह सकते हैं कि हिंदी – गजल की जो शक्लोसूरत आज है, वह दुष्यंत कुमार की दी हुई है। उनके रास्ते पर चलकर आज की गजल, भाषा के शुद्धिकरण से दूर आम लोगों तक पहुँच रही है। उनकी जुबान में बातें कर रही है।

(स्त्रोत पत्रिका: ''प्रगतिशील साहित्य'' सितम्बर 2024)

मां-बाप के जीते जी करिए सेवा, मरने के बाद न करें पाखंड

-बाबू लाल बारोलिया

श्राद्धपक्ष है। पंद्रह दिन में हर दिन किसी न किसी घर में श्राद्ध पूजन होगा। अपने मृतक पूर्वजों को खुश करने के लिए उनकी मन-पसंद मिठाई और खाना बनाकर गाय, कौवों और पंडितों को खिलाया जाएगा। उनके मन-पसंद कपड़े और बर्तन पंडितों को दान करेंगे, ताकि वो दान पंडित जी उन पूर्वजों और मां-बाप तक ले जाकर उनको दे देंगे। पंडित, कौवे-गाय जो स्वादिष्ट खाना खाएंगे वो सब भी उनके पेट तक पहुंचा देंगे, ताकि बहुत खुश हो जाएंगे और वो मरने के बाद अपनी औलादों को दुख नही देंगे। अगर मरने के बाद ही यह सब कुछ लोगों को दिखावे के रूप में करना है कि ये लोग अपने मां-बाप या पूर्वजों को इतना प्यार करते है जो उनकी आज भी मरने के बाद उनकी हर पसंद का ख्याल रखते है और दान करते है कितना खर्चा करते है। लोग उनकी तारीफ करते नहीं थकते कि ऐसी ओलाद भगवान सबको दे। क्या ऐसा वास्तव में है जो यह सब नौटंकी अपनों के मरने के बाद करते हैं। उनके जिंदा रहते कितना ख्याल रखा जाता है। उनकी पसंद का कितना ख्याल रखा जाता है। उनको अपने साथ बैठकर कितनी बार खाना खिलाया जाता है। बीमार होने पर कितना ख्याल रखा जाता है। जब वो चलने-फिरने की स्थिति में नहीं होते है तो कितनी बार सहारा दिया जाता है। जब भूख लगती है तो कितनी बार टाइम से मन पसंद का खाना खिलाया जाता है। जब किसी कारण उनकी आंखों में सजल अश्रुधारा निकलती है तो कितनी बार उनके आंसू पौंछे जाते है। ये ही पूर्वज अपनी औलादों के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर चल दिए, अपने खून-पसीने की गाढ़ी कमाई उनके लालन-पालन, पढ़ाई-लिखाई और उनके भविष्य बनाने में खर्च कर देते हैं। उनकी एक छोटी सी चीख निकलने पर पूरा बदन दर्द से हिल जाता है। खुद रात में बिस्तर गीला कर देने पर औलाद को सूखे पर सुलाकर गीले में सो जाते हैं। उनको उंगली पकड़ कर चलना सिखाना, थक जाने पर कंधे पर बैठाना, उनकी हर खाने पीने और पहनने की पसंद का ख्याल रखते और अंत में ये ही औलाद बूढ़े मां-बाप को एक टूटी चारपाई या खटिया पर छोड़ देना या घर के किसी कोने में अनुपयोगी जगह डाल देना और हर प्रकार से दरकिनार करना और मरने के बाद श्राद्ध पूजन के रूप में ऐसी दिखावटी नौटंकी करके क्या साबित करना चाहते है लोग। श्राद्ध रूपी अंधविश्वास के नाम पर लूटना और लुटाना बंद करो लोगों। इंसान के मरने के बाद या तो उसको जला दिया जाता है या दफना दिया जाता है। उसका पूरा शरीर मिट्टी में मिल जाता है। मरने के बाद कोई मृतक किसी को सुख या दुख देने नहीं आ सकता है। बूढ़े मां-बाप तो अपना सर्वस्व औलादों पर न्यौछावर कर मिट्टी में मिल गए, इसलिए जो कुछ मां-बाप के लिए करना है जीते जी कर लीजिए और जीते जी उनको जितना सुख देना है दे दीजिए उनके मरने के बाद उनको कुछ नहीं मिलने वाला। भारत में यह अंधविश्वास कब खत्म होगा ? विचारणीय है। **- अजमेर**

पृष्ठ 40 का शेष

हिग्स बोसॉन, वो अदृश्य हाथ,
जिसने द्रव्य को वजन दिया,
यही वो नियम था,
जो पीटर हिग्स ने दुनिया को समझाया कि
वस्तु ने भार यहीं से ग्रहण किया।
गुरुत्वाकर्षण का आगमन हुआ,
मास खींचे चला आया एक दूसरे की ओर।
आइंस्टीन ने हमें सिखाया, सापेक्षता का सिद्धांत,
कि समय और आकाशीय संरचना भी निरंतर बदलते हैं,
हर वस्तु, हर तारा, किसी गति में संलग्न है।

तारों को प्रज्वलित किया,
न्यूक्लियर फ्यूजन ने-
वह प्रक्रिया जिसने सूरज को रोशनी दी।
सैकड़ों तारे हर पल जन्म लेते हैं,
और अपनी जीवन यात्रा शुरू करते हैं।

कौन कहता है हर तारा अमर है?
उनका भी एक जीवन चक्र है।
जब तारा मरता है,
वो बन जाता है एक सुपरनोवा,
या फिर तब्दील हो जाता है एक ब्लैक होल में
ऐसी रहस्यमयी जगह
जहाँ प्रकाश भी खो जाता है
और समय भी रुक जाता है।
डार्क मैटर और डार्क एनर्जी-
ये हैं ब्रह्मांड के छुपे रुस्तम,

शेष पृष्ठ 45 पर

अंधविश्वास और स्वार्थ का गठजोड़ देश के लिए नुकसानदेह

–डा. गीता यादवेंदु

मनुष्य के भीतर का डर उसे अंधविश्वासों की ओर अग्रसर करता है. अंधविश्वास मानवीय कमजोरियों व अज्ञानता के कारण पनपते और फलते फूलते हैं। हम सभी भावनाओं से संचालित होते हैं और अपने प्रियजनों से प्रेम करते हैं व जब उन के किसी अनिष्ट की आशंका होती है तो वह डर हमें आस्थाओं और अंधविश्वासों की ओर ले जाता है। उदाहरण के लिए, हम कहीं जाने के लिए निकले और बिल्ली हमारे रास्ते से निकल गई और हमारे साथ कोई दुघर्टना घटित हो गई तो हमारा कमजोर मन यही कहेगा कि बिल्ली रास्ता काट गई थी, इसीलिए यह अनिष्ट हुआ।

मानव मन की इस कमजोरी का फायदा चालाक, स्वार्थी और लालची लोगों ने उठाया और उसे अंधविश्वासों के जाल में फंसा दिया। अंधविश्वास और अनिष्ट की शंका के समाधान के लिए लोग इन बाबाओं, शंकाओं का समाधान करने वालों के पास जाएंगे और ये लोग अपनी स्वार्थपूर्ति करेंगे।

हमारे समाज में तर्क और विज्ञान से ज्यादा महत्तव लोग आस्था और विश्वास को देते हैं जो कि अशिक्षा और गरीबी से उत्पन्न मानसिक दुर्बलता का होता है। अंधविश्वासों की पराकाष्ठा तब होती है जब लोग तर्क, विवेक, बुद्धि को ताक पर रख कर अंधविश्वासों के मायाजाल में फंस कर दूसरों की जिंदगियों से भी खेल जाते हैं। तांत्रिकों के कहने पर धनदौलत, खजाना मिलने या निसंतान होने पर बच्चे के लिए किसी निर्दोष की बलि तक चढ़ा देते हैं ऐसे लोग।

बाबायों की निरर्थक बातों को सोशल मीडिया जिस तरह प्रसारित–प्रचारित कर रहा है उस से अच्छी तरह से समझा जा सकता है कि देश को अंधविश्वासों के किस अंधेरे गर्त में धकेला जा रहा है। बलात्कारी बाबायों की प्रशंसा में अभी भी अखबार रंगे रहते हैं। जेल में भी उन पर अधिकारियों की कृपा दृष्टि रहती हैं और उन्हे वर्ष में कई बार पैरोल पर रिहा कर दिया जाता है। अंधविश्वास का राजनीति और स्वार्थ से बड़ा गठजोड़ है और उसी कारण अंधविश्वासों की दुकान खूब फलफूल रही है क्योंकि जनता को मूर्ख बना कर, तरहतरह के मायाजालों में उलझाकर, जनता के विवेक को कुंद कर के ही सत्ता पर कब्जा बनाए रखा जा सकता है और जिंदगी में ऐशोआराम के मजे लूटे जा सकते हैं। इस में बाबा और नेता दोनों शामिल हैं। ये बाबा बड़ी चालाकी से आम जनता के विवेक को शून्य कर देते हैं।

धार्मिक कट्टरता और कटुता

आजकल धार्मिक कट्टरता एवं कटुता व असहिष्णुता का माहौल इस कदर बढ़ गया है कि यदि ऐसे लोगों के बीच बैठ जाओ तो भले ही उन की बात से सहमत न हो फिर भी उन का विरोध करना उचित नहीं लगता। अंधश्रद्धा और धार्मिक कट्टरता किसी भी तर्क, बहस को खुलेदिल से समझने और स्वीकारने को राजी नहीं है।

आज गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, अव्यवस्था, भ्रष्टाचार आदि तरहतरह की मुसीबतों से त्रस्त आम आदमी की भीड़ पलायनवादी रास्ता अपना कर शांति व सुकून की तलाश में बाबाओं की शरण में जाती है जो बड़ी धूर्तता से इन का इस्तेमाल अपने ऐशोआराम व प्रसिद्धि के लिए करते हैं। एक बाबा जिस के लाखों भक्त हैं, कहता है कि मेरे शिष्य मुझे कुछ न दें, बस, प्रतिदिन 1 रुपया मैं उन से स्वीकारूंगा। अब प्रतिदिन 1 रुपया अपने 10 लाख भक्तों से लिए तो 10 लाख रुपए हो गए बाबा के। इन बाबाओं की राजनेताओं से कैसी सांठगांठ होती है, यह जगजाहिर है। जैसे जैसे चुनाव नजदीक आते हैं, बाबा अपना काम करने लगते हैं और जनता के विवेक को शून्य कर उसे अंधविश्वासों व आस्थाओं के जाल में फंसा कर उस का इस्तेमाल अपने स्वार्थ के लिए करने लगते हैं।

ध्यान भटकाते धार्मिक मुद्दे

यही माइंड गेम है जो हिटलर–मुसोलिनी, पुतिन, शी जिनपिंग और न जाने कितने विश्व के सत्ता के प्रेमी राजनेता खेलते रहे हैं और खेल रहे हैं। विश्वास को ही जब कट्टरता का आवरण पहना कर अपरिवर्तनीय, असहिष्णु बना दिया जाता है तो वह अंधविश्वास का रूप ले लेता है।

हमारा समाज बुरी तरह से अंधविश्वासों के जाल में जकड़ा हुआ है। जीवन के कदमकदम पर हमारी गतिविधियों पर अंधविश्वासों ने डेरा जमाया हुआ है। छत पर कौवा बोले तो कोई मेहमान आने वाला है। घर का कोई सदस्य या मेहमान जाए तो तुरंत झाड़ू नहीं लगाते। आंख फड़के तो कुछ होने वाला है। शरीर पर अगर छिपकली गिर जाए तो धन मिलेगा। सांप को मारा तो अगले जन्म में बदला लेगा। बाहर जाते समय कोई

छींक दे तो थोड़ी देर रुक कर जाना होता है वरना अनिष्ट होने की आशंका होती है। किसी शुभ काम को करने जाने से पहले दही चीनी खिला कर भेजा जाता है। गर्भावस्था में नारियल खाने से बच्चा गोरा पैदा होगा। घर से निकलते समय रास्ते में सफाई वाला दिखे तो अच्छा होगा। अर्थी दिखने का भी अर्थ होता है। सोना खोना अशुभ होता है। सोना पाना शुभ होता है। पीपल के पेड़ को काटते नहीं हैं क्योंकि उस पर आत्माओं का वास होता है आदिआदि. कुल मिला कर भारत अंधविश्वासों का गढ़ है। ऐसा नहीं है कि अंधविश्वास केवल भारत में ही प्रचलित हैं, संसार के हर देश के समाज में कुछ न कुछ अंधविश्वास प्रचलित हैं क्योंकि ये मानवीय कमजोरियों के परिणाम हैं, हां, भारतीय समाज में अंधविश्वासों की अति ही है जो कि हमारे तर्कहीन दृष्टिकोण और परिश्रम से ज्यादा भाग्य पर यकीन होने की पुष्टि करते हैं।

रहीसही कसर टीवी धारावाहिकों, सोशल मीडिया और धर्मभीरु जनता से वोट के भूखे नेताओं ने पूरी कर दी है जो शिक्षा, स्वास्थ्य, बेरोजगारी, जनसंख्या वृद्धि जैसी किसी भी समस्या का समाधान नहीं चाहते और उस का सरल सा, सब से आसान उपाय है जनता को धर्म व अंधविश्वासों के जंजाल में उलझाए रखो। हर टीवी धारावाहिक में पूरा परिवार ज्यादातर समय पूजापाठ में ही लगा रहता है और यहां शगुनअपशगुन होते ही रहते हैं। पूजा के बीच में दीपक बुझ जाए तो अपशगुन। मूर्ति गिर जाए तो अपशगुन।

नायिका के हाथ में मंदिर से अचानक फूल आ कर गिर जाता है तो शगुन। सिंदूर अचानक फैल कर सीधे नायिका की मांग पर आ कर गिरता है और नायक से उस का रिश्ता ईश्वर द्वारा जोड़ दिया जाता है. उस के भीतर आत्मा भी आ जाती है जो उस से अपने काम कराती है। बस, यही सब दिखाया जाता है हमारे धारावाहिकों में जिन का विवेक, बुद्धि, तर्क, विज्ञान, शिक्षा से दूरदूर का संबंध नहीं होता है। गूगल पर आप सर्च करो तो उस पर औरत को वश में करने के उपाय, चाणक्य नीति के अनुसार चरित्रहीन या चरित्रवान औरत के लक्षण या फिर राशि के अनुसार आप के व्यक्तित्व की पहचान जैसे लेख आते रहते हैं जो यूजर या पाठक पर गहरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालते हैं और उसे अंधविश्वासों के इस दलदल में धकेलते हैं। गूगल प्लेस्टोर पर एस्ट्रो टौक जैसी ऐप्स उपलब्ध हैं। जहां 24 घंटे ज्योतिष आप को सलाह देने को उपलब्ध हैं।

कुतार्किक बनता देश

हर वह व्यक्ति जो किसी भी बात को बिना तर्क की कसौटी पर कसे विवेकहीन हो कर मानता है या अंधानुकरण करता है वह शिक्षित या अशिक्षित कोई भी हो सकता है। ऐसे लोगों को आसानी से बरगलाया जा सकता है। ये लोग देश व समाज की प्रगति नहीं होने देते। अनपढ़ या अशिक्षित ही नहीं, पढ़ेलिखे, शिक्षित भी तर्कहीन विश्वासों के मायाजाल में उलझे हुए हैं।

एक पोंगापंथी, रूढ़िवादी, अंधविश्वासों के जाल में उलझा हुई जनशक्ति वाला समाज देश की प्रगति में अपना कोई योगदान नहीं देता है। तर्क और विज्ञान से वास्ता न रख कर वह बस, अंधानुकरण को अपनाता है। भारतीय समाज को इस भ्रमजाल से निकालने की आवश्यकता है किंतु निराशा की बात यह है कि सत्ताप्राप्ति के लिए हमारे नेतृत्वकर्ता भी जनता की भावनाओं को इन्हीं तरीकों से भुनाते हैं और अन्य वर्ग, जिन में अधिकारी, कर्मचारी भी शामिल हैं, सरकारों के नक्शेकदम पर चल कर उन्हीं की नीतियों को बढ़ावा देने में लगे हैं. देखना यह है कि यह सब कब तक चलता रहेगा और देश कब इस मानसिक गुलामी से उबरता है?

साभार- ''सरिता'' पत्रिका (फरवरी 2024)

पृष्ठ 43 का शेष

जो दिखते नहीं,
पर जो हर चीज़ को धकेलते हैं।
हर गैलेक्सी, हर तारा,
उसी के बल से अपने रास्ते पर चल रहे हैं,
एक विस्तार जो कभी रुकता नहीं।
धर्म कहता है, 'भगवान ने यह सब रचा,'
पर विज्ञान कहता है,
'यह सृष्टि नियमों से बंधी है।'
न कोई चमत्कार, न कोई दैवीय शक्ति,
केवल नियम और प्रक्रियाएँ,
यह सब प्रकृति के अदृश्य नियम हैं,
ठीक वैसे ही जैसे चुंबक खींचता है लोहे को
और आग में गुण है जलाने का।
विज्ञान एक यात्रा है,
प्रकृति की गुत्थियाँ सुलझाने की।
आओ, तर्क और विज्ञान को अपनाएँ,
इस ब्रह्मांड के रहस्यों को समझने के लिए,
आओ, विज्ञान के साथ चलें–सच्चाई की ओर।

–धर्मेन्द्र आज़ाद

भूतिया मकान

–ओशन सतनामी

हमारे गांव में एक घर को भूतिया मकान कहा जाता था। गांव के लोग थे कि उस घर में मसान (भूत) रहता है। डर की वजह से शाम होते ही इस मकान के रास्ते में सन्नाटा पसर जाता था। कोई व्यक्ति इस रास्ते से 6 बजे के बाद नहीं गुजर पाता था। यहां आना–जाना पूरी तरह से बंद हो जाता था। कई लोग कहते भी थे कि उसी गली में मसान ने पटक दिया था और हाथ पैरों पर पड़े जख्मों के निशान को भी दिखाते थे। वह घर गांव में भुतिया घर के नाम से फेमस था।

एक बार दादा जी किसी बात को लेकर जमकर डांट लगा दी। इससे नाराज होकर मैं अपने घर से बाहर निकल गया और दादा जी ने गेट को बंद कर दिया। फिर मैंने चिल्लाया कि दरवाजा खोलो। शाम के बाद रात हो गई। मैंने गेट खुलवाने के लिए बहुत चिल्लाया, लेकिन खुला नहीं और न ही दादा जी की कोई प्रतिक्रिया आई। रात 12 बजने के बाद भी दरवाजा नहीं खुलने पर मैं हताश–निराश होकर रात को सोने का जुगाड़ तलाशने के लिए निकल पड़ा।

मेरे गले में एक गमछा था। मैं आस–पास सोने के लिए जगह की तलाश करता रहा, लेकिन नींद पूरी करने के लिए कहीं कोई स्थान नहीं दिखा। आखिर में जब थक–हार गया तो मुझे वही भूतिया घर दिखाई दिया और हिम्मत करके वहां चला गया। उस मकान का सांकल खोला तो मुझे कुछ पैरा नजर आया। उसी पैरा में सो गया। रूम बिल्कुल अंधेरा था। रात भी एकदम अंधेरी थी। मैं गमछे को ओढ़कर सो गया। हल्के ठंड पड़ रही थी।

मेरी नींद इतनी पड़ी कि सुबह 8 बजे मैं जागा। तब उसी दिन से मुझे मालूम हो गया कि भूत नाम की कोई चीज नहीं होती है। जब भी दादा जी से झगड़ा होता था तो मैं उसी भूतिया घर में जाकर सो जाता था। ऐसे बहुत अनुभव है, जिसको याद करके कई बार हंसी छूट जाती है। भूत–प्रेत के नाम से रात में गलत काम करने वाले चोर–उचक्के लोग ऐसी अफवाह फैलाकर इसका फायदा उठाते हैं। भूत, प्रेत, डायन और काला साया ये सब कुछ भी नही होते हैं। यहां जिंदा आदमी ही भूत है, अगर उसी रात कोई व्यक्ति आ जाता तो हार्ट अटैक से मर जाता। डर ही भूत है। ऐसे कई घटनाएं मेरे साथ घट चुकी हैं।

जाने–माने दार्शनिक डॉक्टर वेद प्रकाश वर्मा जी का निधन

दिल्ली विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र के पूर्व विभागाध्यक्ष और मानववादी, तर्कशील विद्वान डॉक्टर वेद प्रकाश वर्मा का गत 30 अगस्त 2024 को ढकौली (जीरकपुर) में हो गया है। वर्मा जी की इच्छानुसार उनका देहदान पीजीआई चंडीगढ़ को कर दिया गया। डॉक्टर वर्मा जी ने दर्शनशास्त्र विषय पर अनेक पुस्तकें लिखीं; जिनमें प्रमुख पुस्तकें इस प्रकार हैं: धर्म–दर्शन की मूल समस्याए, नीतिशास्त्र के मूल सिद्धांत, डेविड ह्यूम का दर्शन, लुई ब्रेल– व्यक्तित्व और कृतित्व, भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन में निरीश्वरवाद।

डॉ. वेद प्रकाश वर्मा का जन्म 1933 में बहावलपुर (अब पाकिस्तान) में हुआ। 9–10 माह की अल्पायु में नेत्र ज्योति से वंचित होने के बावजूद उन्होंने शिक्षा में सदैव उच्च स्थान भी प्राप्त किए। जैसे कि 1960 में एम.ए. में आगरा विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान। सन् 1968 में दिल्ली विश्व विद्यालय से दर्शनशास्त्र में पी.एच.डी. की डिग्री प्राप्त की। अनेक वर्षों तक दिल्ली विश्व विद्यालय के दर्शनशास्त्र विभाग में अध्यापन के बाद वे इसके अध्यक्ष भी रहे हैं। 'भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन में निरीश्वरवाद' के लिए उन्हें 'के. के. बिरला फाउडेंशन' द्वारा 'शंकर पुरस्कार' द्वारा सम्मानित किया गया।

1956 में जब वे बी. ए. में पढ़ते थे, तो नाटककार रेवती शरण शर्मा का नाटक 'इन्सान' पढ़कर आपका धर्म से मोह–भंग हो गया और नास्तिक हो गए। वर्मा जी के अनुसार कुल 9 भारतीय दर्शन हैं, जिनमें से योग और वेदांत दर्शन को छोड़कर शेष 7 निरीश्वरवादी हैं। अधिकतर भारतीय दर्शन आत्मवादी तो हैं, लेकिन वे ईश्वरवादी नहीं है। ये हैं: सांख्य, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, बौद्ध, जैन और लोकायत दर्शन। उनकी इस विवेचना से नास्तिक तर्कशील विचारधारा को काफी बल मिलता है। यह तथ्य भारतीय दार्शनिक परम्परा में निरीश्वरवाद का वर्चस्व सिद्ध करता है। वर्मा जी के अनुसार धर्म एक अरबों–खरबों का स्थापित व्यवसाय है।

वर्मा जी का संदेश था कि–केवल मनुष्य ही स्वयं अपनी और दूसरे मनुष्यों और प्राणियों की सहायता कर सकता है। और कोई शक्ति आपकी सहायता नहीं कर सकती है। हम इस महान व्यक्तित्व को शत शत नमन करते हैं।

(रिपोर्ट : मनोज मलिक, चंडीगढ़)

जब बच्चे के कॉलर कटे!!

अजायब जलालआना

गुजरे समय बाल कटने की घटनाओं के बाद, सिरसा के एक गांव में कुछ समय पहले एक कॉलर कटने की घटना हुई। जिस कारण घर परिवार व समाज में तरह तरह की अफवाहें उड़ने लगी।

कोई उसे दैवीय प्रकोप, तो कोई उसे किसी के द्वारा की गई शरारत बता रहा था।

आखिर सच का पता लगाने के लिए घर वालों ने सुनी सुनाई बातों पर चलते हुए किसी पहुंचे हुए बाबा तक पहुंच की।

वो बाबा अपनी दैवीय शक्ति के कारण प्रसिद्ध था। जो हिजरायत (नाखुन में पूरी मूवी दिखाना)से घटना को अंजाम देने वाले की तस्वीर सहित सारी गतिविधी को दिखा देता था।

घर वाले अपने साथ एक छोटे बच्चे को लेकर गए थे, बाबा ने उसके नाखुन पर थोड़ा काला तेल लगाया। और अपने सामने बैठाया।

बाबा बोलता गया, देख उस औरत के हरे कपड़े पहने हैं.. वो देख उसके हाथ में कैंची है.. वो कैंची से सोये हुए बालक के कॉलर काट रही है.. अब उसने कॉलर काट दिया..कॉलर वहीं गिर गया.. अब वो कैंची को अपने बैड बॉक्स में रख रही है.. बैड का बक्सा खोल लिया और कैंची रख दी...

उपरोक्त बार-बार कहे बाबा के शब्दों के साथ बालक भी अब हाँ कह कर सहमति प्रकट कर रहा था... घर वाले हैरान बाबा के दिखाये चमत्कार को नमस्कार कर रहे थे।

अब घर वापिस आये तो आते ही झगड़ा शुरू हो गया, घर वालों ने बाबा द्वारा बताए हुलिए/चेहरे के हिसाब से किसी पड़ोसन का नाम ले लिया। कहते इसने कॉलर काटे हैं...

लड़ाई झगड़ा बढ़ता देख पंचायत हो गई। आधुनिक पंचायत के एक पंचायत मैंबर ने कहा जिस बाबा ने इस औरत का नाम बताया है, उस बाबा के पास मैं अपना बच्चा लेकर जाऊंगा। देखते हैं, वो सच बताता है कि नहीं.. फ़ैसला पंचायत पंच पर छोड़ दिया।

दूसरे दिन पंच साहब उसी बाबा के पास अपने बच्चे को साथ लेकर गए।

बाबा ने वैसे ही बच्चे के नाखुन पर काला तेल लगाकर अपने सामने बैठाया, और बोलना शुरू किया। हरे कपड़े पहने.. कैंची उठाई.. कॉलर काटा.. कॉलर गिर गया.. बैड का बॉक्स खोला.. अब वापिस कैंची रख रही है... कहने के बाद वह बच्चा भी हाँ कह कर बाबा की बातों पर सहमति प्रकट कर रहा था। पंच ये सुनकर बाबा के पैरों में नतमस्तक हो गया!

अब वापिस आते ही आधुनिक पंच ने अपना फ़ैसला सुना दिया। कॉलर इसी औरत ने काटे है। बाबा ने हमारे बच्चे को प्रत्यक्ष दिखा दिया।

उस औरत ने विरोध जताया, कहा मैंने ऐसा कार्य नहीं किया, मुझे आप बेमतलबा बदनाम कर रहे हो!! उस औरत की किसी ने न सुनी तो गुस्से में औरत ने कह दिया, जा जाओ करलो जो कुछ करना! हां मैंने ही काटे हैं..

औरत के घर वाले हैरान, परेशान! ये हमारी औरत पर दोष गलत लगा रहे हैं।

औरत के घर वालों और जिसके कॉलर कटा था,को किसी ने तर्कशीलों के पास जाकर अपनी समस्या का समाधान निकालने के लिए कहा।

अगले दिन वे मा. शमशेर चोरमार के पास स्कूल ही आ गए और उपरोक्त आपबीती कहानी सुनाई। और तुरन्त ही गांव जाने के लिए कहने लगे।

शमशेर ने उन्हें बाबा द्वारा दिखाये चमत्कार के बारे में व्याख्या करते हुए बताया, कि ये सम्मोहन क्रिया है।

जिसमें छोटे बच्चे को किसी चमकीली जगह पर लगातार आँखों को एक जगह ध्यान केंद्रित करवाने से उसके कानों में पड़ रही आवाजों को दृश्यों के रूप में महसूस करने लग जाता है। ये अर्धचेतन मन की कोरी कल्पनाएं होती हैं, हमारे तर्कशील लोग ऐसी सम्मोहन क्रिया बड़ी आसानी से कर लेते हैं,

ऐसे तो हम भी किसी बच्चे के माध्यम से सभी लोगों के सामने आपके गांव के सरपंच को ही कॉलर काटते दिखा सकते हैं। क्या फिर सरपंच को दोषी मान लिया जायेगा?

उनके साथ आये लोगों ने तुरंत पंचायत सदस्यों के साथ हमारी बात करवा दी। हमने पंचायत को पाखंडी बाबा के खिलाफ़ एक्शन लेने के लिए अपील की, और कहा ये बाबा आपके गांव के परिवार के लोगों को आपस में लड़ाने का काम कर रहा है। बाबा द्वारा दिखाये चमत्कार का पर्दाफाश हम यहां आकर कर सकते हैं।

तर्कशीलों की ऐसी चुनौती भरी बातें उस गांव में पहुंचने मात्र से और दोनों परिवारों को समझाने से दोषी घोषित औरत का दोष का दाग़ सदा के लिए साफ हो गया। **94167 24331**

कोई भी कथावाचक गंभीर बीमारियों के ईलाज के सम्बन्ध में भ्रम व अंधविश्वास न फैलाएं

– डॉ. दिनेश मिश्र

हर व्यक्ति को अपने धर्म के प्रचार, प्रसार करने, कथा पढ़ने, प्रवचन देने का अधिकार है, पिछले कुछ दिनों से देखा जा रहा है कि कथावाचक कथा पढ़ने से साथ, टोटके बाजी, चमत्कार, बीमारियों के इलाज के नाम पर भी भ्रम उतपन्न कर रहे हैं जो कि सोशल मीडिया, यू ट्यूब में भी उपल्ब्ध है। यदि वास्तव में गंभीर बीमारियां प्रवचन,आशीर्वाद, प्रसाद,टोटकों से ही ठीक होती तो सरकार को मेडीकल कॉलेज खोलने व देश में अस्पतालों व डॉक्टरों की जरूरत नहीं होती।

धार्मिक कथावाचक चाहे वे किसी भी धर्म के हों स्वयं बीमार होने पर तो अपने ईलाज के लिए एम्स, मेडीकल कॉलेज, बड़े बड़े अस्पतालों में जाते है और मेडिकल साइंस की उपलब्धियों, उपकरणों का उपयोग कर स्वयं का ईलाज कराते है जो उचित भी है क्योंकि हर व्यक्ति को उचित उपचार ही करना चाहिए। वहीं दूसरी ओर वे अपने ही अनुयाइयों को उनकी गम्भीर बीमारियों के ईलाज के संबध में भ्रामक तरीके, टोटके, बताते है जो किसी भी दृष्टि से ठीक नहीं है। हर बीमार व्यक्ति को सही उपचार, सही मार्गदर्शन और मानवीय संवेदना पाने का अधिकार है।

चमत्कार, जादू, टोना, भूत प्रेत जैसी मान्यताओं का कोई अस्तित्व नहीं है। आम लोगों को इस प्रकार अंधविश्वास में नहीं फँसना चाहिए।

तथाकथित चमत्कार के दावे बनावटी होते है.ऐसा कोई भी व्याक्ति नहीं है जिसे किसी भी प्रकार से दूसरे के विषय में जादू से जानकारी मिल सके अलग अलग माध्यम से प्राप्त कुछ सूचनाएं चमत्कार के रूप में प्रस्तुत की जाती है यह एक प्रकार की ट्रिक ही है, जैसे जादूगर अपने शो में अलग अलग प्रकार के खेल दिखाते हैं, जैसे रुपये दुगने करने, किसी व्यक्ति के दो टुकड़े करने, फिर जोड़ देने, ताजमहल को गायब करने जैसे करतब। पर वे इसे सिद्धि नहीं कहते सिर्फ एक मनोरंजन के तौर पर यह भी इनसे किसी को कोई लाभ नहीं होगा। क्योंकि ऐसे चमत्कारों से न ही किसी का भला हो सकता है और न ही कोई व्यापक जनहित के काम, क्योकि यदि चमत्कारों से ही देश के कार्य सम्भव होते तो सरकार को पंच वर्षीय योजनाएं नहीं बनानी पड़ती और न ही शिक्षा, ऊर्जा, रोजगार, रक्षा, चिकित्सा की समस्याओं के लिये, विकास के लिए योजना बना कर काम करना पड़ता।

जब चिकित्सा विज्ञान का आविष्कार नहीं हुआ था तब बीमारियों को जादू टोने का कारण और मानसिक बीमारियों को भूत प्रेत के होने के कारण माना जाता था लेकिन जब से चिकित्सा विज्ञान का आविष्कार हुआ है, नए-नए मेडिकल कॉलेज अस्पताल खुले हैं, बीमारियों के अलग-अलग कारण तथा उसके हिसाब से इलाज ढूंढे गए हैं और अभी भी जारी है जैसे कोरोना के समय मे न ही कोई बाबा काम आया न उनका चमत्कार। डॉक्टरों, अस्पतालों, दवाओं, वैक्सीन से कोरोना नियंत्रण में आया।

उसी प्रकार कुछ मानसिक बीमारियों को अंधविश्वास के कारण लोग भूत-प्रेत की वजह मानते थे, तथा उसके लिए झाड़ फूक कराने जाते थे। उसका भी उपचार आजकल मनो चिकित्सकों द्वारा किया जाता है जो कि व्यक्ति की बीमारी और उसके लक्षण के आधार पर तय होता है। किसी बीमार व्यक्ति को जादू टोना करने, भूत आने की बात कह कर भ्रमित करना, प्रेतों की सेना, आदि काल्पनिक बाते अविश्वासनीय ही नहीं बल्कि हास्यास्पद भी हैं, क्योकि जादू टोने के शक में महिलाओं को टोनही कह कर प्रताड़ित करने और मार डालने के हजारों मामले प्रति वर्ष देश भर से सामने आते है। इस अंधविश्वास से लोगों को बाहर निकालने की जरूरत है न कि उनके चमत्कार, जादू टोना, भूत प्रेत जैसे भ्रम में डाल कर अंधविश्वास बढ़ाने की। भारत सरकार के ड्रग एन्ड मैजिक रेमेडी एक्ट के अंतर्गत यह सब अपराध है।

आम लोगों में चमत्कार, जादू टोने, भूत प्रेत के नाम पर अंधविश्वास फैलाना उचित नहीं है ऐसे मामलों में प्रशासन को संज्ञान लेकर आवश्यक कार्यवाही करनी चाहिए।

अध्यक्ष (अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति, छत्तीसगढ़)

शिक्षा का कम से कम इतना प्रभाव होना चाहिए कि धार्मिक विषयों में हम मूर्खों की प्रसन्नता को प्रधान न समझे। – प्रेम चन्द

प्रो. डॉ. जी.एन. साईबाबा जीवन संघर्ष को सलाम



लोक अधिकारों की मुक्ति का मार्ग दिखाने वाले दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर प्रो. साईबाबा अब हमारे बीच नहीं रहे। कथित माओवादी संबंधों के लिए यूएपीए के झूठे केस में एक दशक जेल में बिताने के बाद मार्च 2024 में वे जेल से रिहा हुए। प्रो. साईबाबा के परिवार के अनुसार, उनके साथ बिताए गए सात महीनों से यह स्पष्ट था कि जेल में बिताए गए एक दशक के दौरान उनके बहुत से अंगों ने काम करना बंद कर दिया था।

नागपुर जेल से रिहा होते समय ही वे गंभीर बीमारियों से ग्रस्त थे। वे निजाम मेडिकल इंस्टिट्यूट हैदराबाद में इलाजरत थे। 12 अक्टूबर 2024 को वे हमेशा के लिए इस जहां को छोड़कर चले गए।

साईबाबा ने हैदराबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम.ए. किया और अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय से उन्होंने एम.फिल प्राप्त किया। फिर दिल्ली विश्वविद्यालय से अपनी पीएच.डी. पूरी की, जहां बाद में वे एक फैकल्टी सदस्य के रूप में शामिल हुए।

वे एक लेखक होने के साथ एक अध्ययनशील भी थे और साहित्य के माध्यम से अपने चरित्र और व्यक्तित्व को आकार देते थे। वे विभिन्न सामाजिक आंदोलनों के दोस्तों के विशाल घेरे के दृढ़ संकल्पित, ईमानदार व्यक्तित्व के धनी थे। साईबाबा की बेटी अपने पिता के बारे में बताती है कि वह चाहते थे कि समाज समान और स्वतंत्र हो।

सच्चाई की आवाजों को कुचलने में लगी कट्टरपंथी फासीवादी सरकार ने उन्हें बिना इलाज के जेल के अंदर तिल-तिल मरने के लिए मजबूर किया। बेशक वे अपने साथियों समेत झूठे केस से बाइज्जत बरी होकर जेल से बाहर आ गए, पर जेल के अत्याचारों ने उन्हें लगभग मृत्यु के कगार पर पहुंचा दिया था। प्रो. साईबाबा के परिवार और उनके प्रियजनों के अनुसार, जेल उन्हें तोड़ नहीं सकी। उनकी इच्छा अनुसार उनके मृत शरीर को हैदराबाद मेडिकल कॉलेज को मेडिकल रिसर्च कार्यों के लिए प्रदान कर दिया गया।

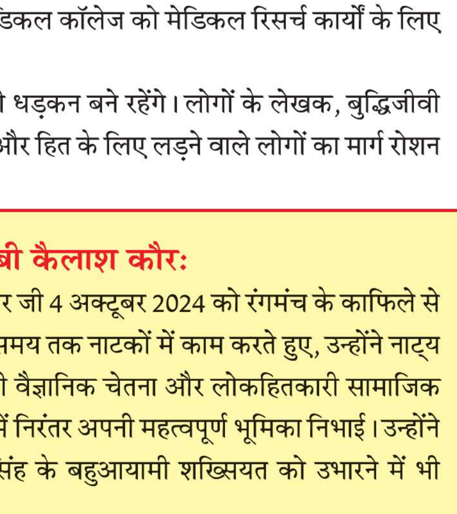
शारीरिक रूप से बिछड़ गए प्रो. साईबाबा हमेशा क्रांतिकारी लहरों की धड़कन बने रहेंगे। लोगों के लेखक, बुद्धिजीवी प्रो. साईबाबा को सलाम। अलविदा प्रोफेसर साईबाबा! आपका संघर्ष हक और हित के लिए लड़ने वाले लोगों का मार्ग रोशन करता रहेगा।



रोशन नायिका बीबी कैलाश कौर:

पंजाबी रंगमंच के नए रास्तों की रचयिता कैलाश कौर जी 4 अक्टूबर 2024 को रंगमंच के काफिले से हमेशा के लिए जुदा हो गईं। गुरशरण भा जी के साथ लंबे समय तक नाटकों में काम करते हुए, उन्होंने नाट्य कला की बारीकियों को समझने के साथ-साथ रंगमंच की वैज्ञानिक चेतना और लोकहितकारी सामाजिक बदलाव के महत्वपूर्ण उद्देश्य को आम जनता तक पहुँचाने में निरंतर अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अपने जीवन साथी और शिरोमणि नाटककार गुरशरण सिंह के बहुआयामी शख्सियत को उभारने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1932 में पाकिस्तान के गुजरांवाला शहर में जन्मीं कैलाश कौर जी ने 1955 में बी.ए. और एल.एल.बी. की शिक्षा प्राप्त की। फिर खालसा कॉलेज अमृतसर से एम.ए. पंजाबी करने के अलावा शास्त्रीय संगीत की भी शिक्षा ली। पढ़ाई के दौरान नाटकों में अभिनय के साथ-साथ शास्त्रीय संगीत और लोकगीत गाने के शौक के कारण उन्होंने कई संगीत कार्यक्रमों में हिस्सा लिया और अपनी बेहतरीन प्रस्तुति दी। उन्हें अपनी काबिलियत से कई पुरस्कार हासिल किए।



हर क्षेत्र में महिलाओं को आगे बढ़ाकर प्रमुख स्थान दिलाने में उनका अविस्मरणीय योगदान आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा बना रहेगा।

तर्कशीलों ने जगाए वैज्ञानिक चेतना के चिराग

तर्कशीलों ने अपने अनोखे अंदाज में चेतना के चिराग जलाने की उत्साहजनक और प्रेरणादायक मिसाल कायम की है।

तर्कशील सोसायटी पंजाब ने राज्य में होने वाली छठी विद्यार्थी चेतना परख परीक्षा की तैयारी के लिए स्कूलों में जाकर स्कूल प्रमुखों और शिक्षकों के सहयोग से वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक, रंगमंच और असली लोक नायकों के बारे में विचार सांझा किए।

विद्यार्थियों के मिडल और सेकेंडरी दो समूहों तक पहुंच बनाकर 32,000 किताबें वितरित की गई। सभी विद्यार्थियों ने पंजाब के विभिन्न केंद्रों में 20 और 21 अक्टूबर को एक ही समय पर परीक्षा पत्र प्राप्त कर चेतना परीक्षा में भाग लिया।

आने वाले दिनों में तर्कशील सोसायटी पंजाब के मुख्य कार्यालय तर्कशील भवन बरनाला में शीर्ष प्रदर्शन करने वाले प्रतिभागियों और उनके माता-पिता को सम्मानित किया जाएगा।

आज जब पुस्तकों और अखबारों को पढ़ने की घटती प्रवृत्ति के कारणों को समझने, विचारने और नए प्रयास करने की जरूरत महसूस की जा रही है, तब तर्कशील सोसायटी पंजाब ने नई चेतना के चिराग जलाने का बेमिसाल कार्य किया है।

उम्मीद की जाती है कि अन्य संस्थाएं भी इस से प्रेरणा लेकर सोसायटी के ऐसे प्रयास को प्रोत्साहित करने और अपनी संस्थाओं व कार्यक्षेत्रों में पुस्तकालय और रंगमंच के उत्साह को जगाने, बढ़ाने के लिए अपने साधनों और परिस्थितियों के अनुसार सार्थक प्रयास करेंगी।

.... अमोलक सिंह





If undelivered please return to :

Tarksheel

Tarksheel Bhawan, Tarksheel Chowk,
Sanghera By Pass, BARNALA-148101
Post Box No. 55
Cell. 98769 53561, 98728 74620
Web : www.tarksheel.org
e-mail : tarkshiloffice@gmail.com

BOOK POST
(Printed Matter)

To ....
....
....